दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

गु

वर्ग संख्या

पु

सहित 30

चाहिए अ

लगेगा।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

लेखक

श्री० पं० लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी 'विशारद',

'हिन्दी प्रभाकर'

प्रकाशक

रघुनन्दन शर्म्मा

रुरल पब्लिशिंग हाउस

प्रयाग

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

जो गुण नृप हरिचन्द में, जगहित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिचन्द में, लखहु प्रतच्छ सुजान ॥

(पं० शीतलाप्रसाद)

लेखक

श्री० पं० लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी 'विशारद'
'हिन्दी-प्रभाकर'

प्रकाशक

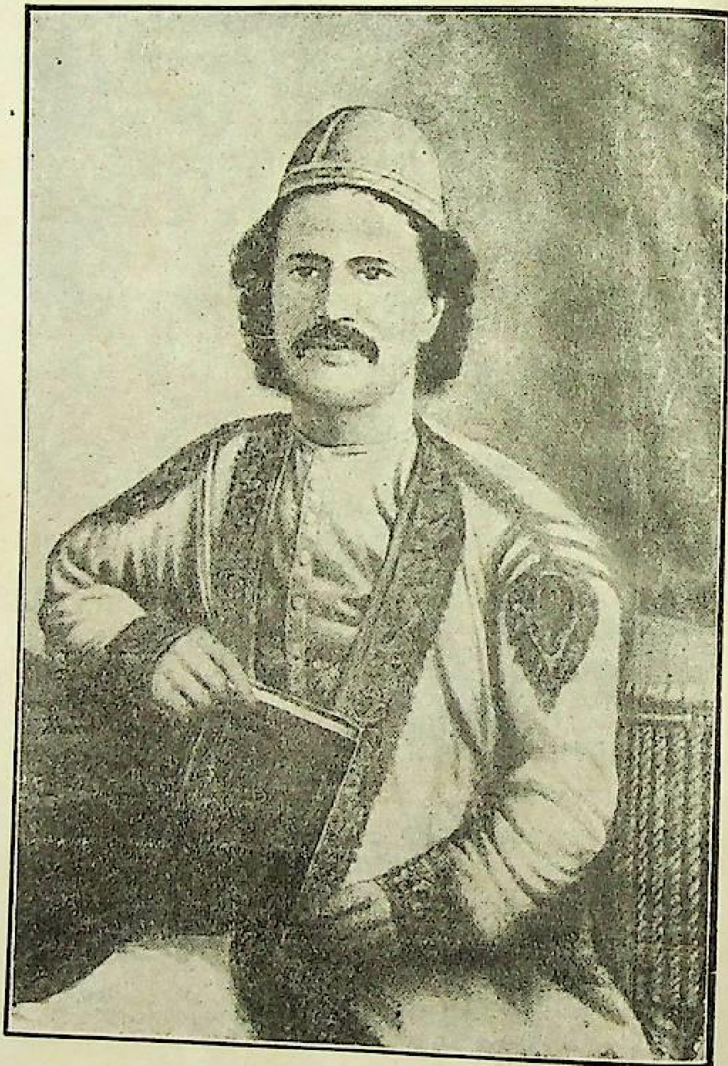
रघुनन्दन शर्म्मा

रूरल पब्लिशिंग हाउस,

इलाहाबाद

मूल्य ।≈)

विषयसूची



भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

श्री हरिः

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

वंश परिचय और जन्म

हिन्दी के प्रसिद्ध महाकवि और लेखक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म जिस वंश में हुआ वह वंश भारतवर्ष के इतिहास में यथेष्ट प्रख्यात है। इस वंश के आदि पुरुष राय बालकृष्ण जी के पूर्वजों का दिल्ली के शाही घराने से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध था। जैसा कि बाबू राधाकृष्ण-दास ने इनके सम्बन्ध में लिखा है कि—"जब शाहजहाँ का बेटा शाह-शुजा सन् १६४० के लगभग विशाल बंगाल का सूबेदार होकर वहाँ गया तब राय बालकृष्ण के पूर्वज भी उसके साथ दिल्ली छोड़कर बंगाल चले गये और जैसे-जैसे बंगाल में मुसलमानी राजधानी बदलती गयी वैसे-वैसे ये लोग भी अपना प्रवास स्थान परिवर्त्तित करते गये। राज-महल और मुर्शिदाबाद में इनके पूर्वजों के उच्च प्रासादों के अवशिष्ट चिन्ह अब तक पाए जाते हैं।" इसी वंश में इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमी-चन्द जी हुए। ये महाशय अँग्रेज़ों के प्रधान सहायकों में से थे। अँग्रेजों में इनका बड़ा मान था। इनके नौ पुत्र हुए जिनमें से दो को 'राजा' और दो को 'रायबहादुर' की उपाधि दी गयी। इन नवों पुत्रों में से केवल बाबू फतेहचन्द का वंश चला। शेष पुत्रों के विषय में कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं है। बाबू फतेहचन्द के पुत्र हर्षचन्द और हर्षचन्द के पुत्र बाबू गोपालचन्द्र हुए। बाबू गोपालचन्द्र हिन्दी भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् और महाकवि थे। कविता में ये अपना नाम गिरधर-दास या गिरिधारन रखते थे! उनकी सभी कविताओं में यही नाम

आया है। उन्होंने कुल मिलाकर छोटे बड़े ४० ग्रन्थ लिखे जिनमें जरा-सन्ध-वध जैसे महाकाव्य भी हैं। ये जब ग्यारह वर्ष के ही थे तभी सम्वत् १९०१ में इनके पिता बाबू हर्षचन्द का देहान्त हो गया। घर और कोठी के सारे प्रबन्ध यद्यपि इनके पिता बिजीलाल नामक एक व्यक्ति को दे गए थे परन्तु प्रबन्ध ठीक न होने के कारण पिता की मृत्यु के दो ही वर्ष बाद इन्होंने सारा प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। १३ वर्ष की लघु अवस्था में भी इन्होंने घर और कारबार का प्रबन्ध बड़े उत्तम ढग से किया। ऐसी अवस्था में शिक्षा का प्रबन्ध हो ही कैसे सकता था। जो उम्र पढ़ने की थी उसमें घर और कोठी का प्रबन्ध सम्हालना पड़ा। परन्तु ये प्रतिभा-सम्पन्न और बड़े स्वाध्यायी थे। अपने खाली समय में वे खूब स्वाध्याय करते थे। फलस्वरूप उन्होंने संस्कृत और हिन्दी में प्रकाण्ड योग्यता प्राप्त कर ली। अँग्रेजी शिक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध न हो सका। परन्तु फिर भी वे समय की गति को खूब समझते थे। भारतेन्दु जी ने उनके सम्बन्ध में लिखा है कि उनके सब विचार परिष्कृत थे। बिना अँग्रेजी की शिक्षा के भी उनको वर्त्तमान समय का स्वरूप भलीभाँति विदित था। पहले तो धर्म के विषय में ही वे इतने परिष्कृत थे कि वैष्णव व्रत पूर्ण पालन के हेतु अन्य देवता मात्र की पूजा और व्रत घर से उठा दिये थे। टामसन साहब लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के समय काशी में पहला लड़कियों का स्कूल हुआ तो हमारी बहन को उन्होंने इस स्कूल में प्रकाश रीति से पढ़ने बैठा दिया। यह कार्य उस समय बहुत ही कठिन था, क्योंकि इसमें बड़ी ही लोकनिन्दा थी। हम लोगों को अँग्रेजी शिक्षा दी। सिद्धान्त यह कि उनकी सब की सब बात परिष्कृत थीं और उनको स्पष्ट बोध होता था कि आगे काल कैसा चला आता है।" स्वभाव के भी वे बड़े सरल थे। सारांश यह कि एक सज्जन पुरुष में जो गुण होने चाहिए वे सब उनमें विद्यमान थे! परन्तु अवस्था कुछ न पायी। केवल २७ वर्ष

की अवस्था में संवत् १९१७ वै० शु० ७ को उनका देहान्त हो गया। इतनी छोटी अवस्था में ४० ग्रन्थों का लिखना कम आश्चर्य की बात नहीं है। यदि वे पूरी आयु पाते तो न जाने हिन्दी भाषा का भण्डार कितना पूर्ण होता। परन्तु हिन्दी का दुर्भाग्य कि उन्हें आयु ही न मिली। जिसकी यहाँ चाहना होती है शायद परमात्मा के यहाँ भी उसकी आवश्यकता पड़ जाती है। "जाकी यहाँ चाहना है वाकी वहाँ चाहना है जाकी यहाँ चाहना वाकी वहाँ चाहना।" इन्हीं महाकवि के दो पुत्र हुए। ज्येष्ठ पुत्र हमारे चरित्र नायक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और छोटे बाबू गोकुलचन्द्र इनका जन्म भाद्र शु० ७ संवत् १९०७ को हुआ। इनकी अवस्था पाँच वर्ष की ही थी कि इनकी माता का देहान्त हो गया। दुर्भाग्य का अन्त यहीं नहीं हुआ। ९ वर्ष की अवस्था में पिता इन्हें छोड़ परलोक गामी हुए। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की कहावत के अनुसार ये बालकपन से ही अपनी प्रखर प्रतिभा के लक्षण दिखाने लगे थे। अपने योग्य पिता के ये योग्य पुत्र हुए। इन्होंने बहुत छोटी अवस्था में ही यह दोहा बनाया था—

'लै ब्यौढ़ा ठाढ़े भये, श्री अनिरुद्ध सुजान।'
बानासुर की सेन को, हनन लगे भगवान॥

पिता ने इस पर प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया कि तू हमारे कुल का नाम करेगा। पिता का यह आशीर्वाद कितना सच्चा निकला यह बताने की कोई आवश्यकता नहीं।

अध्ययन

पिता के जीवन काल में ही इनका विद्यारम्भ करा दिया गया था परन्तु उनके देहान्त के बाद इनकी शिक्षा का यथोचित प्रबन्ध नहीं हुआ। पिता की मृत्यु के बाद वे काशी के क्वीन्स कालेज से सम्बद्ध एक स्कूल में पढ़ने लगे। माता पिता का बचपन में ही देहान्त हो जाने के कारण इनकी प्रकृति स्वच्छन्द हो गयी। सिर पर अभिभावक न रहने से

प्रायः ऐसा ही होता है। स्कूल तो ये बराबर जाते रहे परन्तु पढ़ने में इनका मन न लगता। पर बुद्धि तीव्र होने के कारण ये थोड़े ही समय में अपना पाठ याद कर लेते थे। जब ये १५ वर्ष के हुए तब इन्होंने सकुटुम्ब जगदीश पुरी की यात्रा की। बस इनकी स्कूली शिक्षा भी यहीं समाप्त हो गयी। इसके बाद इन्होंने घर पर ही स्वाध्याय किया। उसी से इतने प्रकाण्ड विद्वान् हुए। स्वाध्याय से उन्होंने संस्कृत, हिन्दी ही नहीं बल्कि अँग्रेज़ी, बंगला आदि भाषाओं में भी यथेष्ट योग्यता प्राप्त कर ली थी। अँग्रेज़ी और बंगला से इन्होंने जिन नाटकों का अनुवाद किया है उनके देखने से इनकी योग्यता का भली भाँति परिचय मिलता है। उन अनुवादों में भी मौलिक ग्रन्थों का आनन्द आता है। पिता की तरह ये भी स्वाध्याय से विद्वान् हुए। यदि इनकी शिक्षा का सुन्दर प्रबन्ध हुआ होता और ये स्कूल या कालेज में कुछ अधिक दिनों तक शिक्षा प्राप्त कर लेते तो इनकी प्रखर प्रतिभा और भी जागृत हो उठती। सोने में सुगन्ध हो जाती।

अँग्रेजी का अध्ययन इन्होंने कुछ दिनों तक राजा शिवप्रसाद जी सितारे हिन्द से किया था। इसी नाते ये बराबर उनको अपना गुरु मानते रहे। आगे चल कर राजा साहब और उनके विचारों में बहुत भिन्नता आ गयी। परन्तु मतभेद होने पर भी वे उन्हें अपना गुरु मानते रहे और उसी तरह उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते रहे।

जगदीश यात्रा

सं० १९२२ (सन् १८६४-६५) में ये सकुटुम्ब जगन्नाथ पुरी की यात्रा को गए। इस यात्रा में इन्हें अनेक नए अनुभव हुए। जीवन का परिवर्त्तन भी इसी समय से आरम्भ हुआ। स्कूली शिक्षा तो छूट ही चुकी थी। जो कुछ अध्ययन करते थे वह स्वयं करते थे। बंगला भाषा अध्ययन भी इसी समय किया। थोड़े ही समय में बंगला का इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया कि जगदीश यात्रा से लौटने पर इन्होंने बंगला

नाटक 'विद्या सुन्दर' का सन् १८२६ में अनुवाद किया। इस यात्रा की एक घटना इनके जीवनी लेखक बाबू राधाकृष्णदास ने लिखी है। उससे पता चलता है कि मातृ पितृ हीन धनी बालकों को किस प्रकार स्वार्थी लोग अपने फंदे में फसाते हैं! उनका धन अपहरण करने की कैसी कैसी कुचेष्टाएं करते हैं। बाल्यावस्था में बुद्धि परिपक्व नहीं होती अतएव कुसंग में पड़ जाने पर प्रायः बालक बुरे रास्ते में पड़ जाते हैं। उन्हें ऋण आदि लेकर अपनी इच्छाओं को पूरा करने का चस्का पड़ जाता है। जिस समय ये जगदीश यात्रा को चलने लगे उस समय नगर के कई धनी मानी सज्जन इन्हें पहुचाने शहर के बाहर तक आए। इनमें सज्जन और स्वार्थी सभी प्रकार के मनुष्य थे। एक महाशय ने इन्हें एकान्त में ले जाकर दो अशर्फियाँ दीं। कहा कि आप इन्हें अपने पास रखिए। दूर की यात्रा है। कभीं न कभी काम आयेंगी। बालक हरिश्चन्द्र को कुछ आश्चर्य हुआ। बोले कि मेरे पास सब कुछ है। किसी बात की कमी नहीं है। आप ये अशर्फियाँ अपने पास रखिए। मुझे आवश्यकता नहीं है परन्तु वे महाशय तो अपने मन में जो निश्चय करके आए थे उससे भला कैसे हटते। बोले आप नहीं जानते। पैसा जो पास रहता है वही काम देता है। आप अपने पास रखिये। ख़र्च हो जाय तब तो कोई बात ही नहीं अन्यथा मुझे आकर लौटा दीजिएगा। बालक हरिश्चन्द्र उनकी बातों में आ गए। अशर्फियाँ लेकर एक ब्राह्मण जो साथ में था उसे दे दीं। उन महाशय की चाल काम कर गयी। वे इस तरह बालक हरिश्चन्द्र को ऋण का चसका लगा कर अपने फंदे में फंसाने आए थे। उनके पितामह ने बाबू हर्षचन्द की नाबालगी में उनके घर को खूब लूटा था। अब वे हरिश्चन्द्र को लूटने की तैयारी में थे। अशर्फियाँ पास आने से इन्हें ख़र्च की भी सूझी। धीरे-धीरे दोनों अशर्फियाँ ख़र्च हो गयीं। अब ख़र्च को कहाँ से आवे। घर वालों से न मांग कर ऋण लेने की सूझी। और ऋण लिया। इसी तरह इन

दो अशर्फ़ियों का सूद दर सूद इतना बढ़ा कि आगे चलकर उन महाशय ने इनकी पन्द्रह हज़ार की हवेली हथिया ली। इसीसे बड़े लोगों ने कहा है कि बालको के संग पर बहुत ध्यान देने की आवश्यकता है। दुनियाँ में बुरे लोगों की कमी नहीं है। वे हर समय इसी चिन्ता में रहते हैं कि कब कोई फन्दे में फंसा और दीन दुनिया से गया। परिपक्व बुद्धि वालों पर ऐसे लोगों का रंग नहीं चढ़ता। ऐसे लोग प्रायः रईसों के अपरिपक्व बुद्धि बालकों पर ही अपना फन्दा डालते हैं।

इस यात्रा में इन्हें अच्छे और बुरे सभी तरह के अनुभव हुए। बुरे अनुभव का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अच्छे अनुभवों में भिन्न-भिन्न लोगों से परिचय होने के कारण इनके विचार बहुत कुछ परिष्कृत हुए। बंगला के उन्नत शील साहित्य से परिचय हुआ। उसी लेख से इन्हें अपनी मातृ भाषा को उन्नत बनाने का चसका लगा। फलस्वरूप जीवन के अंतिम दिनों तक ये हिन्दी की सेवा करते रहे।

कविता की ओर रुचि और हरिश्चन्द्र स्कूल

जगन्नाथ पुरी की यात्रा में इन्होंने जो भिन्न-भिन्न विद्वानों से परिचय प्राप्त किया था उससे साहित्य-सेवा की ओर इनकी विशेष रुचि हुई। कविता करना भी इसी समय से आरम्भ किया। नीचे लिखी दो कविता इसी समय रची गयीं।

हमतौ मोल लिए या घर के।

दास दास श्रीवल्लभ कुल के, चाकर राधावर के॥
माता श्री राधिका, पिता हरि, बन्धु दास गुन कर के।
हरी चंद तुमरेही कहावत, नहि विधि के नहिं हरके॥

कविता के अतिरिक्ति गद्य पद्य मय नाटक भी लिखने का सूत्र पात इसी समय से हुआ। 'प्रवास नाटक' लिखा। परन्तु वह दुर्भाग्य वश न तो पूरा लिखा गया और न प्रकाशित ही हुआ।

काशी में उन दिनों जो दो एक अंग्रेज़ी स्कूल थे उनमें शुल्क (फ़ीस) लेकर बालकों को अंग्रेजी शिक्षा दी जाती थी। फलस्वरूप जो शुल्क देकर पढ़ने में समर्थ थे वे ही अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। ग़रीबों के लड़कों के लिए कोई उचित प्रबन्ध नहीं था। यह अभाव इन्हें बुरी तरह खटका। इन्होंने मनहीमन एक ऐसे स्कूल की स्थापना करने का विचार कर लिया जिससे सर्व साधारण लाभ उठा सकें। समय की गति को देखकर इन्हें यह निश्चय हो गया था कि बिना अंग्रेजी शिक्षा के काम नहीं चलेगा। अपनी मातृ भाषा की शिक्षा के साथ-साथ अंग्रेजी की भी आवश्यकता है। यह निश्चय कर ये पहले पहल अपने घर पर ही कुछ बालकों को पढ़ाने लगे। जो बालक पढ़ने आते थे उनसे किसी प्रकार की भी फ़ीस नहीं ली जाती थी। इतना ही नहीं जो विद्यार्थी कागज़ स्लेट आदि पढ़ने लिखने की वस्तुएं न ख़रीद सकते थे उन्हें सामान भी ख़रीद कर दिए जाते थे। इस से ग़रीब विद्यार्थियों का उत्साह बढ़ा। छात्रों की संख्या दिन पर दिन बढ़ने लगी। यह देख इन्होंने एक वैतनिक अध्यापक नियुक्त कर दिया। अब शिक्षा का कार्य अच्छे ढंग से चलने लगा। इसके बाद जब बालकों की संख्या और भी बढ़ी तब इन्हें नियमित रूप से एक स्कूल स्थापित कर देने की आवश्यकता का अनुभव होने लगा। अतएव सन् १८६७ (संवत् १९२४) में इन्होंने 'चौखम्भा स्कूल' की स्थापना की। इस स्कूल में ख़र्च का सारा भार इन्होंने अपने सिर लिया। जितने छात्र पढ़ने आते थे उनमें से अधिकाँश बिना फीस दिये पढ़ते थे। जो अधिक ग़रीब थे उन्हें पुस्तकें और भोजन कपड़ा भी दिया जाने लगा। आरम्भ में यह स्कूल अपर प्राइमरी था। धीरे-धीरे उन्नति करके मिडिल हुआ और आज 'हरिश्चन्द्र हाई स्कूल' के नाम से उनकी कीर्त्ति को अमर कर रहा है।

साहित्यिक जीवन और पत्र-पत्रिकाएँ

यद्यपि जगदीश यात्रा से लौटने पर ही इन्होंने कविता करना और

नाटक लिखना प्रारम्भ कर दिया था परन्तु इनका यथार्थ साहित्यिक जीवन संवत् १९२५ से आरम्भ होता है। इस वर्ष इन्होंने बंगला नाटक विद्यासुन्दर का अनुवाद किया। 'कवि वचन सुधा' का जन्म भी इसी साल हुआ। आरम्भ में यह पत्र मासिक रूप में निकलता था। और इसमें प्राचीन कवियों की कविताएं ही प्रकाशित हुआ करती थीं। देव, मलिकमुहम्मद जायसी, चन्द, कबीर, बिहारी आदि कवियों की कविताएं क्रमशः प्रकाशित होती थीं। आगे चल कर गद्य को भी स्थान दिया गया। फिर कुछ समय बाद इसी पत्र को पाक्षिक कर दिया गया। पाक्षिक के बाद यही पत्र साप्ताहिक निकलने लगा। इस पत्र का सिद्धान्त वाक्य (Moto) यह था:—

खल गनन सों सज्जन दुखी मति होंहि, हरिपद मति रहै।
उपधर्म छूटैं स्वत्व निज, भारत गहै कर दुख वहै॥
बुध तजहिं मत्सर नारि नर सम होंहिं, जग आनँद लहै।
तजि ग्राम कविता सुकवि जन की अमृत बानी सब कहैं॥

यह सिद्धान्त वाक्य इन्हें बहुत अधिक प्रिय था। अपने बनाए कई नाटकों में इन्होंने इसे उद्धृत किया है। सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के अंत में 'भरत वाक्य' के रूप में यहीं सिद्धान्त वाक्य दिया गया है। इस सिद्धान्त वाक्य से इनके विचारों का भी पता चलता है। 'स्वत्व निज भारत गहै' उप-धर्म छूटैं; 'बुध तजहिं मत्सर' आदि वाक्यों से इनकी देश के प्रति कैसी भक्ति थी, धर्म के संबंध में कैसे विचार थे आदि बातों का आभास मिल जाता है।

यद्यपि उन दिनों हिन्दी पढ़ने की ओर लोगों की विशेष रुचि न थी परन्तु ये खर्च की कुछ भी पर्वा न कर 'कवि वचन सुधा' को ऐसे सुन्दर रूप में निकालते थे कि लोग उसे चाव से पढ़ने लगे। साथ ही ये अधिकांश प्रतियाँ मुफ़्त भी लोगों को देते थे। कवि वचन सुधा, के अतिरिक्त कई पुस्तकें भी इन्होंने प्रकाशित कीं। उनकी भी हज़ारों

प्रतियाँ इन्होंने मुफ़्त वितरित कीं। इनका उद्देश्य तो हिन्दी प्रेमियों की संख्या बढ़ाना था। उसमें ये पूर्णतया सफल हुए। धन्य है इनका मातृ-भाषा प्रेम।

सरकार ने भी इनके पत्र का यथेष्ट आदर किया। इसकी सौ प्रतियाँ सरकारी शिक्षा विभाग की ओर से खरीदी जाती थीं। धीरे-धीरे यह पत्र लोकप्रिय होने लगा। यहाँ तक कि भारतवर्ष के बाहर भी इस पत्र की प्रशंसा हुई। फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् गार्सन दी तासी ने सन् १८७० में अपने पत्र 'ली लैंगुआडेस हिन्दुस्तानिस' में इस पत्र की बड़ी प्रशंसा की थी। भारतेन्दु जी का इस पत्र के साथ साढ़े सात वर्ष तक संबंध रहा। बाद में पंडित चिन्तामणि ने इसका भार उनसे ले लिया। परन्तु उसकी उन्नति न हुई। कई वर्ष तक निकल कर अंत में बंद हो गया।

सन् १८७३ में इन्होंने 'हरिश्चन्द्र' मैगज़ीन निकाला! कुछ दिनों बाद इसका नाम बदलकर 'हरिश्चन्द्रिका' कर दिया गया। यह पत्र मासिक रूप में निकलता था। इसका सिद्धान्त वाक्य यह था:—

कविजन कुमुदगन हियविकासि चकोर रसिकन सुख भरै।
प्रेमिन सुधासों सींचि भारत-भूमि आलस तम हरै॥
उद्यम सुऔषधि पोखि विरहिन, तापि खल चोरन दरै।
हरिचन्द्र की यह चन्द्रिका परकासि जग मंगल करै॥

इनके प्रत्येक 'सिद्धान्त वाक्य' से देशभक्ति टपकती है। भारतवर्ष के प्रति इनका अगाध प्रेम था। ये संसार के सम्मुख फिर वही प्राचीन सर्वगुण सम्पन्न भारत उपस्थित करना चाहते थे। भारत वर्ष के सम्बन्ध में इन्होंने दो नाटक भी लिखे हैं। यहाँ के मनुष्यों में आलस्य का प्राधान्य देख इन्हें बड़ा दुःख होता था। 'भारत भूमि आलस-तम हरै' आदि वाक्यांश से इन्होंने इसी ओर संकेत किया है।

हरिश्चन्द्र मैगज़ीन जिस आकार में निकलता था वही आकार 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' का नहीं रखा गया। उसका आकार मैगज़ीन से छोटा कर दिया गया और उसमें विविध विषयों को स्थान दिया जाने लगा। हरिश्चन्द्र मैगज़ीन में कुछ अंश अंग्रेज़ी का भी रहता था। वह सम्भवतः इसलिए कि पत्र भारतवर्ष के बाहर भी जाता था।

१५ अक्तूबर सन् १८७३ के अंक 'हिन्दीभाषा' 'Hindi Bhasha', 'The Present state of the middle class men of the N. W. Province', 'Religions', 'Allahabad' आदि शीर्षक लेख अंग्रेजी में ही प्रकाशित हुए थे। इनको अंग्रेजी में इसलिए प्रकाशित किया जाता था कि अधिकारी वर्ग भारतीयों के विचार भलीभाँति समझ सकें। इन दोनों पत्रों में यद्यपि गद्य-पद्य लेख रहते थे परन्तु कविताओं का ही प्राधान्य रहता था। 'नाटक' उपन्यास आदि भी क्रमशः प्रकाशित होते थे। 'धनञ्जय विजय' नाटक क्रमशः हरिश्चन्द्र मैगेज़ीन में प्रकाशित हुआ था। कविताओं में कवित्त, पद, पहेली आदि सभी तरह की कविताएँ रहती थीं। कविताओं के एक, दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

भारत-दिवारी

जित तित भारत मैं रही, प्रगट दिवारी छाय।
मूरखता तम निसिकुहू, कहूँ न पंथ लखाय॥

❀ ❀ ❀ ❀

भए दिवारी के मनो, बबुआसकल अमीर।
सबै खिलौना से रँगे, पहिरे सुन्दर चीर॥
धन तेरस बिन धन कहाँ, नरका चौदस ठीक।
भयो ठीक जमघएट इत, यामै कछु न अलीक॥

❀ ❀ ❀ ❀

सबही विधि इम सबन को, धन जूआ में हार।
याही सों 'दीवालिया', भयो हिन्द यहि बार॥
'सदा दिवाली सन्त घर, जो गुड़ गेहूँ होय।
जो यहि नहिं तौ बैठिए, घर चुप ह्वै सब कोय॥

पहेलियां (बूझजाइए)

ऊपर औ नीचे रहै, बहै बीच तरु होय।
वटै, बढ़ै, मेटै, लिखै, नाम न जानै कोय॥
बसै अमावस बोल मैं, बानर उलये होय।
गावत पञ्चम बरन छलि, बिरला बूझै कोय॥

पहेलियों की पितामही

सुन्दर पर दिन बुद्धि बल, निज सरूप में होय।
प्रथम लेत सोंटा जबै, सब जग नासत सोय॥

इस पत्र के निकलने से हिन्दी का बड़ा उपकार हुआ। अनेक लेखक तैयार हुए। हिन्दी के प्रति लोगों की रुचि बढ़ी। मुंशी ज्वाला प्रसाद, बाबू तोताराम, लाला श्रीनिवासदास, बाबू काशीनाथ, बाबू गदाधर सिंह, पंडित बदरीनारायण चौधरी, राव कृष्णदेवशरण सिंह और पं० बापूदेव शास्त्री आदि विद्वानों के लेख इसमें रहा करते थे।

ये स्त्री शिक्षा के भी बड़े पक्षपाती थे। स्त्रियों को निरक्षर रखना इन्हें पसन्द न था। 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' पत्र पुरुषों के लिए ही विशेष उपयोगी था। स्त्री जाति के लिए उससे कोई लाभ न था। यह अभाव इन्हें खटका। इस अभाव की पूर्त्ति के लिए इन्होंने सन् १८७४ में 'बाला बोधिनी' नाम की मासिक पत्रिका निकाली। इसमें स्त्रियोपयोगी लेख ही प्रायः रहा करते थे। चार वर्ष तक इस मासिक पत्रिका को

इन्होंने निकाला परन्तु आगे ये इसका व्यय भार न सह सके और लाचार इन्हें इसको बन्द कर देना पड़ा। छः वर्ष तक 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' को प्रकाशित किया। इसके बाद पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या को उनके अनुरोध करने पर उन्हें दे दिया। वे इसे अधिक दिन न चला सके और उसका प्रकाशन बंद कर दिया। इन पत्र पत्रिकाओं का इतनी जल्दी बन्द हो जाने का मुख्य कारण यही था कि लोगों को उन दिनों समाचार पत्र, अथवा मासिक पत्रों के पढ़ने का चसका नहीं था। इतना ही नहीं बहुत से लोग तो इनके विरुद्ध रहते थे। यह इन्हीं का काम था कि सारा व्ययभार अपने ऊपर सहन कर कई वर्षों तक इन्होंने इन पत्र-पत्रिकाओं को निकाला। दूसरा यदि इनकी जगह होता तो उसे बहुत पहले ही व्ययभार से घबड़ा कर पत्रों को बन्द कर देना पड़ता। फिर भी जितने दिनों तक ये पत्र निकलते रहे उतने दिनों तक लोगों का इनसे यथेष्ट लाभ हुआ।

सभा और समाजों की स्थापना, देश हितकारी कार्य और दान

साहित्य सेवा तो मानो इनके जीवन का मुख्य लक्ष्य हो गया था। रात दिन ये साहित्य-चर्चा में ही मग्न रहते थे। विद्वानों और कवियों का इनके यहाँ ख़ूब जमाव रहता था। विशेष कर कवियों के तो ये आश्रयदाता ही थे। बड़े-बड़े पुरस्कार देकर लोगों को साहित्य सेवा की ओर लाते थे। इसके लिए कई सभाएँ और समाज स्थापित किये जिनमें लोग समय-समय आकर साहित्यचर्चा करते थे। पेनीरीडिंग (Penny Reading) नाम की सभा इसी उद्देश्य से स्थापित की गयी। इसमें लोग अच्छे-अच्छे लेख लिखकर लाते और पढ़कर सुनाते थे। जो उपयोगी और अच्छे निबन्ध होते थे उन्हें 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में प्रकाशित किया जाता था। इससे लोगों का उत्साह खूब बढ़ता था। नए-नए लेखक तैयार होते थे। इसके अतिरिक्त इन्होंने हिन्दी डिबेटिंग क्लब' (Hindi Debating Club) यंगमेन्सएसोसिएशन, 'काशी

सार्वजनिक सभा' वैश्य हितैषिणी सभा' आदि सभाएं समय-समय पर और भी स्थापित की। हिन्दी डिबेटिंग क्लब में लोग आकर अच्छे-अच्छे विषयों पर आकर परस्पर वादा-विवाद करते थे। अन्त में बहसमुबाहिसे के बाद तथा बात का निर्णय होता था। यंगमेन्सएसोसिएशन' युवकों की सभा की ! 'काशी सार्वजनिक सभा' काशी के नागरिकों के उपकारार्थ स्थापित की गई थी। इसी प्रकार वैश्य हितैषिणी सभा वैश्यों की भलाई के लिए थी।

ये स्वयं तो कई सभाओं के जन्मदाता थे ही। साथ ही अन्य हितकारिणी सभाओं में भी मुख्य सहायक रहा करते थे। 'बनारस इन्स्टिट्यूट' 'कारमाइकेल लाइब्रेरी', 'बाल सरस्वती भवन' के ये मुख्य सहायकों में से थे। कारमाइकेल लाइब्रेरी तथा बाल 'सरस्वती भवन' को इन्होंने हजारों पुस्तकें दान में दी थीं। 'भारत मित्र', 'मित्रविलास' और आर्य-मित्र आदि जितने पुराने पत्र थे उन सबों की लेखादि से सहायता करते थे।

इतना ही नहीं जिस कार्य में देशवासियों का उपकार समझते थे उस कार्य में योग देने से ये कभी पीछे न हटते थे। काशी का प्रसिद्ध मणिकर्णिका घाट इस प्रकार का बना था कि बाहर से आने वाले यात्री फिसलकर गिर पड़ते थे। यात्रियों के इस कष्ट को इनका उदार हृदय न देख सका। तुरन्त अपने व्यय से वहाँ लोहे के छड़ लगवा दिए। इसी प्रकार माधोराय के धरहरे पर भी इन्होंने लोहे के छड़ लगवाए थे।

एक बार खान देश में भारी अकाल पड़ा। वहाँ के लोग दाने-दाने को तरसने लगे। इनका हृदय उनके कष्टों को सुनकर दहल उठा। छोटी-मोटी सहायता से कार्य चलता तो ये स्वयं सारा भार उठा लेते परन्तु एक प्रान्त भर के लोगों की सहायता के लिए यथेष्ट रक़म की आवश्यकता थी। तुरन्त चन्दा उगाहने के लिए निकल पड़े। घर-घर

जाकर हजारों रुपये इकट्ठे किए और उनसे वहाँ के लोगों की सहायता की।

मिस मेरी कारपेन्टर ने जब स्त्री शिक्षा का उद्योग किया तब ये उनके प्रधान सहायक बने। जो कुछ इस कार्य में सहायता कर सकते थे उन्होंने की। विद्यार्थियों को धन, पुस्तकें आदि देकर उत्साहित किया। जो विद्यार्थी अधिक प्रतिभा-सम्पन्न होते थे उन्हें और अधिक पुरस्कार आदि देकर उत्साहित करते थे। अपने स्थापित किये हुए चौखम्भा स्कूल से जब दामोदर दास नाम के छात्र ने बी० ए० पास किया तब ये बड़े प्रसन्न हुए और सोने की एक घड़ी इनाम में दी। इसी तरह काशी के संस्कृत कालेज से आचार्य परीक्षा में जितने परीक्षार्थी उत्तीर्ण हुए उन सबों को एक-एक घड़ी इनाम में दी। बालकों की शिक्षा पर जितना ये ध्यान देते थे उतना बालिकाओं की शिक्षा पर भी इनकी दृष्टि रहती थी। "नारी-नर सम होंहि" तो इनका सिद्धान्त ही था। जितनी बालिकाएं अँग्रेजी में उत्तीर्ण हुईं उन सबों को एक-एक साड़ी पारितोषिकरूप प्रदान की। यह पारितोषिक केवल काशी की बालिकाओं को ही नहीं दिया गया प्रत्युत भिन्न-भिन्न प्रान्त से जितनी लड़कियाँ उत्तीर्ण हुई थीं उन सबों को इनाम दिया गया। इनके इस कार्य की प्रशंसा शिक्षा विभाग के बड़े-बड़े अधिकारियों ने मुक्त कंठ से की।

सन् १८८३ में इलबर्ट बिल के सम्बन्ध में आन्दोलन हुआ। ये उस आन्दोलन के मुख्य सहायक रहे। जब विलियम म्योर काशी में आए तब उनके स्वागत में चारों ओर बड़ी रोशनी की गयी। गंगातट पर जो रोशनी की गयी उसमें इन्होंने एक नाव पर बड़े-बड़े अक्षरों में 'Ot Fix' लिखवा दिया। दूसरी ओर यह दोहा लिखा गया—

'स्वागत स्वागत धन्य प्रभु, श्री सर विलियम मोर'।
टिकस छुड़ावह सबन को, विनय करत कर जोर॥

इस तरह जितने लोकोपयोगी कार्य होते थे ये सब में अगुआ रहते थे। लोकोपयोगी कार्यों में यह मुक्त हस्त हो दान करते थे।

संवत् १९२७ में 'कविता वर्द्धिनी सभा' की स्थापना हुई। इसमें कवि लोग आकर इकट्ठे होते थे। समस्या पूर्तियाँ होती थीं। जिनकी कविता उत्तम समझी जाती थी उन्हें पुरस्कार तथा उपाधि दी जाती थी। साहित्याचार्य पंडित अम्बिकादत्त जी व्यास भी इस सभा के सदस्य थे। 'पूरी अमी की कटोरिया-सी चिरजीवो सदा विक्टोरिया रानी' समस्या की पूर्ति पर उन्हें एक प्रशंसा पत्र और सुकवि की उपाधि दी गयी। इसमें बड़े-बड़े कवि आते थे। काव्य-चर्चा में ही सारा समय व्यतीत होता था।

इसके तीन वर्ष बाद संवत् १९३० में 'तदीय समाज' स्थापित किया गया। इस समाज ने धर्म की बड़ी भारी सेवा की। केवल धार्मिक भावना को लेकर ही यह समाज स्थापित किया गया था। भारतवर्ष में विशेषकर काशी जैसे पवित्र स्थान में गोवध होता देख इन्हें बड़ा क्लेश पहुँचता था। परन्तु ये उद्योगी पुरुष थे। किसी भी कार्य में भरसक उद्योग करने से पीछे नहीं हटते थे। इसी 'तदीय समाज' की ओर से इन्होंने एक प्रार्थना-पत्र गोवध बन्द कराने के लिए दिल्ली भेजा। इस प्रार्थना पत्र पर इन्होंने कई लाख मनुष्यों के हस्ताक्षर कराये। गौ-सम्बन्धी साहित्य भी बराबर प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त इसी समाज की ओर से शराब और मांस के निषेध का प्रचार किया जाता था। लोगों से प्रतिज्ञाएँ ली जाती थीं। इससे लोगों का बड़ा लाभ हुआ। सैकड़ों मनुष्यों ने शराब और मांस खाना छोड़ दिया। 'भगवत् तोषिणी' एक मासिक पत्रिका भी इसी समाज की ओर से प्रकाशित हुई थी पर वह अधिक दिन न चल सकी। इस समाज के सदस्य बड़े-बड़े धार्मिक विद्वान् और रईस थे।

ऊपर जिन सभा और समाजों का उल्लेख किया गया है उनसे भली

भाँति ज्ञात होता है कि इनमें कार्य करने की कितनी लगन थी। संगठन शक्ति का इन्हें कितना ज्ञान था। ये भलीभाँति समझते थे कि बिना एकता के किसी भी आन्दोलन में सफलता नहीं मिल सकती। इसी उद्देश्य को सामने रखकर इन्होंने भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न सभाओं और समाजों की स्थापना की। इन सभाओं से कितना लाभ हुआ यह बताने की आवश्यकता नहीं। जो कुछ उपकार हुआ है वह हमारे सामने है। इन्होंने हिन्दी के लिए यदि अपना तन, मन और धन न लगाया होता तो हिन्दी की जो उन्नत-शील अवस्था आज दिखायी पड़ती है, हिन्दी के जो अनेक प्रेमी दिखायी पड़ते हैं वे शायद ही दिखाई पड़ते। अपना सर्वस्व इन्होंने हिन्दी की सेवा और लोकोपयोगी कार्यों में ही स्वाहा कर दिया। ऐसे लोग संसार में कितने हैं?

सरकारी सम्मान

सरकार में भी इनका सम्मान कम न था। इनके सर्वसाधारण के हितकर कार्यों को देखकर सरकार का ध्यान विशेष रूप से इनकी ओर गया। सम्माननीय मैजिस्ट्रेट (Honorary Magistrate) का नियम जब बना तब १८७० ई० में ये सरकार की ओर से आनरेरी मैजिस्ट्रेट बनाए गए। ये जिस कार्य में जनता की भलाई देखते थे उस कार्य को करने में कभी पीछे न हटते थे। मणिकर्णिकाघाट, तथा माधौराय के धरहरे में लोहे के छड़ लगवाने का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इनके इन्हीं कार्यों से जनता और सरकार दोनों ही इन्हें चाहते थे। म्यूनिसिपेलटी ने इनके कार्यों की बड़ी प्रशंसा की थी। आगे चलकर ये म्यूनिसिपल कमिश्नर चुने गए।

इन्होंने जो पत्र पत्रिकाएँ निकालीं उन सब की सौ-सौ प्रतियाँ सरकार की ओर से ख़रीदी जाती थीं।

महारानी विक्टोरिया के पुत्र ड्यूक आफ़ एडिनबरा। जब भारत आए तब उनके स्वागत सम्मान में इनका प्रधान हाथ रहा। स्वयं ड्यूक महोदय ने इनकी प्रशंसा की थी। ड्यूक के स्वागत में इन्होंने बड़े-बड़े पंडितों से कवित्त बनवा कर और उसे छपवाकर ड्यूक को अर्पण की थी। ड्यूक के स्वागत में जो कविताएँ बनी थीं उसे 'सुमनोञ्जलि' शीर्षक देकर पुस्तकाकार छपवाया गया। इस पुस्तक को देखकर तत्कालीन महाराजा रीवाँ और महाराज विजयनगरम् तो यहाँ तक प्रसन्न हुए थे कि उन्होंने पुस्तक के रचयिता पंडितों को बहुत-सा पुरस्कार दिलवाया था। पंजाब यूनिवर्सिटी ने इनकी योग्यता से मुग्ध होकर अपना परीक्षक चुना।

गुण ग्राहकता

जो स्वयं गुणी होते हैं वे लोग दूसरे लोगों के गुण की क़द्र करना भी जानते हैं। ये स्वयं जितने गुणी थे उतना ही दूसरे गुणी लोगों का आदर करते थे। किसी व्यक्ति में थोड़ा भी गुण देखते थे तो उसका इतना आदर करते थे—उसका इतना उत्साह बढ़ाते थे कि उसका वह थोड़ा-सा गुण भी चमक उठता था। जो यथार्थ में कवि और विद्वान् थे उनके लिए तो कहना ही क्या है। हर तरह से ये उनकी सेवा के लिए तैयार रहते थे। भारतीय अथवा अन्यदेशीय कोई भी गुणी क्यों न हो ये उसका आदर किये बिना नहीं रहते थे। सच भी है जब तक गुणों की क़द्र करने वाले नहीं होते तब तक गुणों का विकास भी नहीं होता। ये उन गुणी जानों का तन-मन-धन हरेक प्रकार से आदर करते थे।

नारायण मार्त्तण्ड नामक एक दक्षिणी विद्वान गणित विद्या में बड़े निपुण थे। कैसा भी कठिन प्रश्न क्यों न होता वे उसे अवश्य हल करते थे। और आश्चर्य की बात तो यह थी कि उनके चारों ओर

कैसा भी शोरगुल क्यों न हो, लोग ताश खेलते रहें, आपस में बातचीत करते रहें पर उनका ध्यान अपने प्रश्न की ओर रहता था और वे उसे ठीक-ठीक हल कर देते थे।

घूमते-घूमते वे काशी में आ पहुँचे। इन्हें उनके आने का समाचार मिल गया। बड़े आदर से ये उन्हें लाये। उनका बड़ा सम्मान किया।

इसी प्रकार एक दूसरे मद्रासी सज्जन थे। उनका नाम था वेंकटसुप्पैयाचार्य। वे महाशय धनुर्विद्या में प्रवीण थे। तरह-तरह के आश्चर्य जनक खेल दिखाते थे। आँखों पर पट्टी बाँधकर लोहे की मोटी से मोटी चद्दर में अपने तीक्ष्ण तीर से छेद कर देते थे। इसी तरह एक आश्चर्य-जनक खेल जो उन्होंने दिखाया वह यह था कि एक व्यक्ति की आँख पर उन्होंने दुअन्नी मोम से चिपकवादी। फिर उसके बोलने पर शब्द भेदी बाण मारा और दुअन्नी उड़ गयी। बड़े-बड़े यूरोपीय विद्वान् भी ये खेल देखने के लिए आए थे। उन्होंने भारतवर्ष की इस धनुर्विद्या को देखकर दांतों तले उँगली दबाई। गुणी ग्राहकों के न होने से ही गुणों का लोप होता जा रहा है। सच है "गुण ना हिरानो गुणग्राहक हिरानो है।" इसी प्रकार उन्होंने और कई आश्चर्य जनक खेल दिखाए। इन्होंने उनका बड़ा सम्मान किया और उनके लिए यथेष्ट पुरस्कार की व्यवस्था करा दी।

कोई किसी भी गुण में पारङ्गत क्यों न हो ये उसका आदर किए बिना न रहते थे। पहलवान, विद्वान्, गणितज्ञ, ज्योतिषी, सभी इनके यहाँ आदर पाते थे। पं० बापूदेव शास्त्री ने एक नए प्रकार के पञ्चाङ्ग की रचना की और इन्हें दिखाया। इन्होंने प्रसन्न होकर उन्हें एक बहुत बढ़िया दुशाला पुरस्कार में दिया।

कविवर परमानन्द ने बिहारी सतसई का संस्कृत अनुवाद किया। ये उस अनुवाद पर इतने प्रसन्न हुए कि उसके लिए ५००) का पारितोषिक दिया। उसी प्रकार पं० सुधाकर द्विवेदी ने जब

'राजघाट पर बंधत पुल, जँह कुलीन की ढेर।
आज गए कल देख के, आजहिं लौटे फेर॥

यह दोहा बनाया था तब इन्होंने १००) पुरुस्कार स्वरूप दिया।

कहाँ तक लिखा जाय ऐसे और भी अनेक उदाहरण हैं। इनकी इस गुणग्राहकता के ही कारण उस समय अनेक विद्वान् और कवि पैदा हुए। गुणी को जब अपने गुण की कद्र करने वाले नहीं मिलते तब वह उत्साह हीन हो जाता है। कोई जब गुण को देखने वाला ही नहीं तब वह किसे अपना कौशल दिखावे। इनके इन गुणों पर ही प्रसन्न होकर काशी के पंडित मंडली ने एक स्वर से कहा था कि—

सब सज्जन के मान को, कारन एक हरिचन्द।
जिम स्वभाव दिन रैन को, कारन एक हरिचन्द॥

और

जो गुण नृप हरिचन्द में, जगहित सुनिये कान।
सो सब कवि हरिचन्द में, लखहु प्रतच्छ सुजान॥

आर्थिक कष्ट

धनाढ्य वंश के होने के कारण यद्यपि इन्हें धन की कोई कमी नहीं थी। परन्तु जब दोनों हाथों से बराबर धन पानी की तरह लुटाया जाय तब वह कहां तक स्थिर रह सकता है। उदारता वश इन्होंने धन का मन चाहा खर्च किया। जो लोग इनके विरोधी थे उन्हें तो मन ही मन प्रसन्नता हुई। "परहित लाभ हानि जिन केरे"। जिनका सिद्धान्त था वे तो इन्हें और बढ़ावे पर रखने लगे। पर जो शुभ चिन्तक थे उन्हें चिन्ता होने लगी। बराबर ख़र्च करते रहने पर कारूं के ख़ज़ाने तक खाली हो जाते हैं। साधारण धनाढ्यों की तो बात ही क्या है।

यद्यपि इनके धन का विशेष भाग लोकोपकारी कार्यों में ही ख़र्च होता था। परन्तु व्यावहारिक रीति के अनुसार घर की ओर भी दृष्टि देना आवश्यक था। घर में दीपक जला कर ही व्यावहारिक संसार मस्जिद में दीपक जलाता है। ये इतने अधिक उदार और धन के प्रति उदासीन रहने वाले थे कि इन्हें इसकी कोई पर्वाह ही न थी।

इनके इस औदार्य को देख तत्कालीन महाराज काशी-नरेश ने इन्हें अपने पास बुलाया। सांसारिक बातों को अच्छी तरह समझा कर उन्होंने कहा—बबुआ घर को देख कर काम करो। इन्होंने उत्तर दिया—महाराज यह धन हमारे पूर्व पुरुषों को खा गया है। अब मैं इसे खाऊँगा! महाराज आश्चर्य चकित होकर चुप हो रहे।

इस प्रकार इन्होंने कई लाख रुपये ख़र्च कर डाले। अब घर के अन्य लोगों की चिन्ता बढ़ी। ये निश्चिन्त ठहरे। इन्हें किसी की क्या चिन्ता! घर वालों ने सलाह मशविरा करके यही तय किया कि घर का बांट हिस्सा कर दिया जाय तब तो धन की रक्षा होगी अन्यथा कुछ वर्षों में ही यदि यही ख़र्च का हाल रहा तो राह का भिखारी बनना पड़ेगा।

निदान घर के धन का बटवारा हो गया। परन्तु इनकी उदारता की आदत फिर भी न छूटी। इधर इन्हें तरह-तरह की वस्तुओं को भी संग्रह करने का शौक़ था। फल यह हुआ कि इन्हें ऋण लेना पड़ा। धन लोलुप महाजन तो ऐसे अवसर की ताक में रहते ही हैं। एक-एक के दो-दो वसूल करने लगे। पर इन्हें फिर भी कुछ चिन्ता न हुई! थोड़े ही दिनों में इनके पास जो कुछ था वह सर्वस्व स्वाहा कर दिया। परन्तु ईश्वर की कुछ ऐसी कृपा थी कि वह इन्हें कहीं न कहीं से देही देता था! यद्यपि लाखों रुपये का इन्होंने ऋण लिया परन्तु मरते समय किसी का एक पैसा भी देना नहीं था। धन्य ईश्वर ऐसे उदार लोगों की सहायता तुम न करते तो और कौन करता।

स्वभाव

इनके कार्यों का जो उल्लेख ऊपर किया जा चुका है उससे इनके स्वभाव का बहुत कुछ परिचय मिल जाता है। परन्तु फिर भी इनके स्वभाव की कई बातों का उल्लेख करना आवश्यक है। स्वभाव के ये बड़े उदार थे। जो कोई इनके पास आया वह खाली नहीं गया। किसी को कष्ट में देखा तुरन्त उसकी सहायता की। किसी पर कभी क्रोध नहीं किया। सभी से आदर पूर्वक मिलते-जुलते थे। सबसे बड़ा गुण यह था कि सदा प्रसन्न रहते थे। कैसा भी मार्मिक कष्ट इन्हें होता था परन्तु ये कभी मलिन मुख नहीं देखे गये। स्वयं तो प्रसन्न रहते ही थे साथ ही अन्य लोगों का मनोरञ्जन भी करते थे। अपार दुःख से दुखी मनुष्य भी इनके यहाँ आया और उसकी वेदना कुछ क्षण के लिए तो दूर हो ही जाती थी।

परिहास प्रिय भी बड़े भारी थे। समय-समय पर लोगों को अपने परिहास से हँसाते रहते थे। (April fool) के दिन तो यह कुछ न कुछ हँसी मज़ाक अवश्य करते थे। एक बार इसी अवसर पर प्रकाशित कर दिया कि एक बड़े भारी विद्वान् यूरोप से आए हैं वे कई तरह की ज्योतिष संबंधी कलाएँ दिखावेंगे। लोग इनकी बातों में आगए। निर्दिष्ट समय पर वहाँ पहुँचे। देखा न वहाँ ज्योतिषी जी हैं और न वे स्वयं। लज्जित होकर लौट आए। समझ गए कि पहली अप्रैल है। अच्छा मूर्ख बनाया। इसी प्रकार ये अनेक तरह के परिहास बराबर किया करते थे। लोगों का इससे बड़ा मनोरञ्जन होता था।

अपनी बात के इतने पक्के थे कि जो कुछ कह देते थे उससे कभी न हटते थे। चाहे इनकी हानि ही क्यों न हो जाय परन्तु इन्हें अपनी बात को निभाना ख़ूब आता था।

एक बार जब इन्हें आर्थिक कष्ट था और घर के धन का बटवारा हो चुका था तब इन्हें कुछ रुपयों की आवश्यकता पड़ी। एक धनलोलुप

महाजन ने इन्हें थोड़ा-सा रुपया देकर तीन हज़ार की हुन्डी लिखवाली। कुछ दिनों बाद उसने इन पर नालिश की। मुक़द्दमा सर सैयद अहमद ख़ाँ बहादुर के यहाँ हुआ। वे बड़े योग्य हाकिम थे। इन पर जो अत्याचार हुआ वह उन्हें अच्छा न लगा। वे सब बातें पहले ही सुन चुके थे। अतएव उनकी इच्छा यह हुई कि वे केवल मूलधन महाजन को दिला देवें। इस विचार को दृष्टि में रखकर उन्होंने इनसे पूछा कि तुमने इस महाजन से असल धन कितना लिया था। इन्होंने उत्तर दिया 'तीन हज़ार।' सैयद साहब मन ही मन झुंझलाये—परन्तु बार-बार पूछने पर भी इन्होंने वही उत्तर दिया। और यह भी कहा कि 'सैयद साहब' मैंने जो कुछ लिख दिया है वह अवश्य दूँगा। थोड़े से धन के लिए मैं अपनी बात से न टलूँगा। धर्म को न बिगाड़ूँगा। लाचार उन्हें तीन हज़ार की डिग्री देनी पड़ी।

ये सहृदय भी बड़े भारी थे। एक बार जब सारा धन लुटा चुके तब इनकी मातामही ने जो दोनों भाइयों के नाम वसीयतनामा लिखा था वह खारिज करवा दिया और सारा धन दूसरा वसीयतनामा लिखकर इनके छोटे भाई गोकुलचन्द्र के नाम कर दिया। क़ानून के अनुसार उस वसीयतनामे पर इनकी स्वीकृति आवश्यक थी। जब इनसे कहा गया तो इन्होंने लाखों की सम्पत्ति की कुछ पर्वाह न कर तुरन्त स्वीकृति दे दी और कहा कि छोटे भाई को संपत्ति मिल रही है। मुझे इसमें क्या आपत्ति हो सकती है।

घर पर आकर इनसे जिसने जो मांगा उसे निराश नहीं किया। इनके पास तरह-तरह के चित्रों का एक बहुत बढ़िया संग्रह था। इसमें इन्होंने अलभ्य चित्र भी लगा रखे थे। एक बार एक महाशय आकर उसे देखने लगे और उसकी बड़ी प्रशंसा करने लगे। इन्होंने उनको इतनी प्रशंसा करते देख कर समझा कि इनका मन चित्रों को ले लेने को लालायित है। तुरन्त कहा यदि आपको पसन्द है तो ले लीजिए। इतना

कहते ही वे उसे ले गए। इस संग्रह को ये बहुत चाहते थे। पीछे उसके लिए ५००) तक देते रहे। पर न मिला।

किसी को दुखी देखते तो इनका हृदय पसीज जाता था। जहाँ तक बन सकता था उसकी सहायता करते थे। ये एक बार कहीं से घूमते हुए आ रहे थे। जाड़े के दिन थे। एक दीन मनुष्य को देखा कि वह बेचारा मारे जाड़े के ठिठुर रहा है। इन पर उसका दुख न देखा गया। अपना बहुमूल्य दुशाला उसे दे डाला। इसी प्रकार कई लोगों की चुपचाप सहायता करते थे। फूलों के गजरे में, लिफाफों में नोट आदि रख कर ये दीनों की सहायता करते थे। धन्य उदारता।

अपनी टेक के इतने पक्के थे कि एक बार राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द के कहने पर मैजिस्ट्रेट ने टाउन हाल में महारानी विक्टोरिया के छोटे पुत्र आलबेनी की मृत्यु की जो शोक सभा होने वाली थी, उसे रोक दिया। लोग आ आकर लौट गए। इन्होंने इसका इतना आन्दोलन किया कि मैजिस्ट्रेट ने अपनी भूल स्वीकार की और राजा शिवप्रसाद भी जब दूसरे दिन सभा हुई तब बिना बुलाए ही आए। उन्होंने सभा में कुछ बोलना चाहा परन्तु लोगों ने उन्हें कुछ भी न कहने दिया।

जिससे एक बार बिगड़ जाती थी उससे फिर कभी न मिलते थे। चाहे वह कैसा ही आत्मीय क्यों न हो। राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के कहने पर महाराजा काशी ने इन्हें लिखा था कि तुमने जो राजा साहब का अपमान किया वह मानों मेरा ही अपमान है। इसका इन्हें इतना बुरा लगा कि ये कभी महाराज के यहाँ न गए। इन्हें यह बात खटकी कि महाराज ने मुझमें और राजा साहब में इतना भेद क्यों समझा। मेरे अपमान पर कुछ भी न कहा और राजा साहब के अपमान का इतना बुरा लगा।

सत्य इन्हें बड़ा प्रिय था। सत्य बोलने वाले से ये बड़े प्रसन्न रहते थे। स्वयं भी उसी के अनुसार चलते थे। सरसैय्यद के सामने जो बातें

इन्होंने कही थीं उससे इनकी सत्य प्रियता का आभास मिल जाता है। इनका सिद्धान्त था कि—

चन्द टरै, सूरज टरै, टरैं जगत के नेम।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द के, टरैं न अविचल प्रेम॥

अपने दोषों को भी छिपाना यह नहीं जानते थे। मनुष्य में दोष और गुण होना स्वाभाविक ही है। सर्वगुण सम्पन्न केवल ईश्वर ही है। वही दोष रहित है। मनुष्य में कोई न कोई दोष अवश्य होता है। हाँ किसी में गुणों की मात्रा अधिक होती है तो किसी में दोषों की। इन्होंने अपने दोषों के सम्बन्ध में स्पष्ट कहा है कि—

जगत जाल में नित बँध्यो, परयो नारि के फंद।
मिथ्या अभिमानी पतित, झूठो कवि हरिचंद॥

मानी भी ये बड़े भारी थी। अभिमान इन्हें छू भी न गया था परन्तु मान को ये जान से भी बढ़कर प्यार करते थे। जिस व्यक्ति ने मान खो दिया उसके पास रह ही क्या गया। ठीक ही कहा है कि—

जाने न देना मान, करना मोह मत धन धाम का।
जब मान ही जाता रहा, तो धन रहा किस काम का॥

अपने स्वभाव का सारांश इन्होंने स्वयं एक कवित्त में दे दिया है। उसको उद्धृत करना यहाँ आवश्यक जान पड़ता है।

'सेवक गुनी जन के चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत चित हित गुन गानी के।
सीधेन सों सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सों,
हरीचन्द नगद दमाद अभिमानी के॥
चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह,
नेही नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के।

सरबस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा रानी के ॥

काव्य-शक्ति और लेखन

वैसे तो इन्होंने बहुत थोड़ी अवस्था में ही एक दोहा बनाया था। परन्तु यथार्थ कविताकाल इनका उस समय से आरम्भ होता है जब ये जगदीश यात्रा से लौटकर आए। फिर तो इनकी काव्य-शक्ति इतनी बढ़ी कि ये मिनटों में कविता बना लेते थे।

कैसी ही कठिन समस्या क्यों न हो ये उसकी चट पूर्तिकर देते थे। हरिश्चन्द्र मैगेज़ीन में इनकी कई समस्या पूर्तियाँ समय-समय पर प्रकाशित हुआ करती थीं। लोग बड़े चाव से पढ़ते थे। उस समय समस्या पूर्ति का प्रचार अधिक था। साधारण समस्याओं की पूर्ति करना उतना कठिन नहीं है। परन्तु समस्याएँ बहुत सोच समझकर कठिन से कठिन दी जाती थीं। इसी में कवि की आशुबुद्धि की परीक्षा होती थी। ये बड़े-बड़े दरबारों में जाते और वहाँ अपनी विलक्षण शक्ति से सबको चकित करते थे।

एक बार ये उदयपुर के महाराणा के दरबार में गए। वहाँ बड़े-बड़े विद्वान् और कवि एकत्र हुए थे। समस्याए थीं 'आसी ना तिहारे ये निवासी कल्पतरुके' 'अशोक की छाँह सखी पिय पेख्यो' और 'जेती मधुराई भूप सज्जन की भाषा में।' इन्होंने वहाँ बैठे-बैठे ही इसकी पूर्तिकर डाली। दो पूर्तियाँ यहाँ दी जाती हैं।

राधाश्याम सेवें सदा वृन्दावन बास करैं;
रहैं निहचिन्त पद आस गुरुवर के।
चाहैं धन-धाम ना आराम सों है काम,
हरिचन्दजू भरोसे रहैं नन्दराय घर के ॥

ऐरे नीच धनी ! हमें तेज तू दिखावे कहा
गजपर वाही नाहिं होहिं कबौं खरके।
होइ लै रसाल तू भलेई जग जीव काज
आसी ना तिहारे ये निवासी कल्पतरु के॥
जो ही एक बार सुनै, मोहेसो जनम भरि
ऐसो ना असर देख्यो जादू के तमासा में
अरि हूं नवावैं शीस, छोटे बड़े रीझै सब,
रहत मगन नित पूरि होइ आशा में
देखो ना कबहूं मिसरी मैं, मधुहू में ना,
रसाल ईख दाख में न तनिक बतासा में
अमृत में पाई ना अधर सुरंगना के
'जेती मधुराई भूप सज्जन की भाषा में'।

इसी पूर्ति से पता चलता है कि इनकी कविता की शक्ति कैसी तीव्र थी।

इसी प्रकार काशी के महाराज के यहाँ भी ये प्रायः दरबार में जाकर पूर्तियाँ करते थे। एकबार कोई नवीन समस्या दी गई। उपस्थित कवियों में कोई भी उसकी पूर्ति न कर सका। इतने में ये भी पहुँच गए। इन्हें देखते ही महाराज बड़े प्रसन्न हुए। बोले यह एक समस्या दी गयी है। कोई भी इसकी पूर्ति नहीं कर सका। अब आपकी बारी है। आप इसकी पूर्ति कीजिए। इन्होंने थोड़ी देर में ही उसकी पूर्ति कर दी। यह देख वे लोग लज्जित हो गए जिनसे समस्या की पूर्ति न हो सकी थी। खिसियाकर कहने लगे इन्हें पुराना कवित्त याद होगा। इन्हें भला इतनी बात बरदास्त कहाँ होती। चट दूसरा, उसके बाद तीसरा इस तरह कई कवित्त बनाए और कहा कि बताइए यह भी पुराना है। वे महाशय लज्जित हो गए।

यह तो हुई कविता शक्ति की बात। लेखन शक्ति भी इनमें कविता शक्ति से कम न थी। ये जैसे ही उत्तम कवि थे वैसे ही सुन्दर लेखक। इनके पहले जो हिन्दी का गद्य लिखा जाता था वह या तो व्रजभाषा होती थी अथवा राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द की सी उर्दू-मिश्रित भाषा। ऐसी भाषा का प्राबल्य राजा साहब के बनाए इतिहास तिमिर नाशक में है। शुद्ध हिन्दी गद्य के जन्मदाता ये ही थे। इनकी हिन्दी टकसाली हिन्दी होती थी। जितनी शीघ्रता से ये कविता करते थे उतनी ही शीघ्रता से गद्य भी लिख सकते थे। कई लेख और नाटक तो इन्होंने एक ही दिन में रचे हैं। 'अंधेर नगरी' नामक नाटक इनकी एक दिन की ही रचना है। इतनी शीघ्रता से लिखने पर भी नाटक में कोई त्रुटि नहीं आने पाई। यही आश्चर्य की बात है। इसी तरह और भी अनेक लेख और कविताएं एक ही दिन में लिखी गईं। 'विजयिनी विजय वैजंती' भी एक ही दिन की रचना थी।

मौलिक ग्रन्थ लिखने की जैसी प्रबल शक्ति इनमें थी वैसी ही अनुवाद करने की भी। अनुवाद करने में वही व्यक्ति सफल हो सकता है जिसका अधिकार दोनों भाषाओं पर हो। इनके अनुवाद किये हुए कई नाटक हैं। सभी एक से एक बढ़ कर है। कोई संस्कृत से अनुवादित है, कोई अँग्रेज़ी से और कोई बंगला से। इतना ही नहीं प्राकृत भाषा के ग्रन्थों का भी इन्होंने हिन्दी में अनुवाद किया। इनमें मुद्राराक्षस संस्कृत से; कर्पूर मञ्जरी प्राकृत से, विद्या सुन्दर बंगला से और दुर्लभ बन्धु अँग्रेज़ी से अनुवाद किया है। इससे इनकी अलौकिक प्रतिभा का पता चलता है। संस्कृत, प्राकृत, बंगला, अँग्रेज़ी सब भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। सचमुच इन्हें भगवान ने विलक्षण शक्ति दी थी। Merchant of venice का अनुवाद इन्होंने जो दुर्लभ बन्धु के नाम से किया है उसमें यद्यपि मूल ग्रन्थ की कथा छूटने नहीं

पाई है तथापि इन्होंने पात्रों के नामादि हिन्दी ढंग के कर दिए हैं। इससे नाटक की खूबी और भी बढ़ गयी है।

लिखने का इन्हें इतना शौक़ था कि रात दिन जब अवकाश मिलता था तब कुछ न कुछ लिखा करते थे। यही कारण था कि इतनी थोड़ी अवस्था में भी ये इतने अधिक ग्रन्थ बना सके। इनकी इस अद्भुत लेखन शक्ति को देख कर ही डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र इन्हें Writing Machine (लिखने की कल) कहा करते थे।

जिस प्रकार अन्य भाषाओं के ग्रन्थ ये अनुवाद कर सकते थे उसी प्रकार अन्य भाषाओं में लेख या कविता भी लिख सकते थे। इनकी बनाई हुई कई अँग्रेज़ी और बंगला, मारवाड़ी, गुजराती आदि भाषाओं की कविताएँ मिलती हैं'।

मनन करने की इनमें अपूर्व शक्ति थी। हर समय कुछ न कुछ नई बात सोचा करते थे। इनके पहले संस्कृत तथा हिन्दी के सभी कवियों ने काव्य के नौ रस ही माने हैं। परन्तु ये वात्सल्य, सख्य, भक्ति और आनन्द इन चार रसों को और मानते थे। इनका कहना था कि ये चार रस उन नवों रसों में किसी में भी शामिल नहीं किए जा सकते। अपनी प्रबल दलीलों से इन्होंने अपने कथन को प्रमाणित किया। तत्कालीन पंडितों ने भी इस पर विचार किया। उन्हें इनकी बात तथ्यपूर्ण मालूम हुई। किसी-किसी ने तो उदाहरण स्वरूप इनके कथन को उद्धृत किया। तर्करत्न महोदय ने इनकी बात को प्रमाण माना है। उन्होंने लिखा है कि—"हरिश्चन्द्रास्तु वात्सल्य, सख्य भक्त्यानंदाख्याधिकं रसचतुष्टयं मन्यते"।

हिन्दी कविता के अतिरिक्त इन्हें उर्दू कविता का भी शौक़ था। उर्दू में ये कविता भी करते थे। उर्दू कविता में ये अपना नाम 'रसा' रखते थे। उर्दू काव्य चर्चा के लिए इन्होंने सन् १८६६ ई० में एक मुशायरे की भी स्थापना की थी।

विद्या-व्यसनी होने के कारण ये प्राचीन ग्रन्थों का अनुसन्धान भी ख़ूब किया करते थे। जहाँ कहीं प्राचीन हस्त लिखित प्रति देखते थे वहाँ से उसे प्राप्त कर प्रकाशित करने की यथा-साध्य चेष्टा करते थे। प्राचीन खोज सम्बन्धी इनके कई लेख भी प्रायः ऐशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में छपा करते थे। पुराने ग्रन्थों ही की नहीं प्रत्युत प्राचीन ताम्रलिपि, संस्कृत श्लोक, सिक्के आदि का भी वे संग्रह करते थे।

नई सूझ

ये लिखने की कल तो प्रसिद्ध ही थे। साथ ही नई-नई बातें ढूँढ निकालने में भी पटु थे। हर समय कुछ न कुछ सोचा करते थे। फल-स्वरूप तरह-तरह की बातें ढूँढ निकालते थे। यूरोप में जिस प्रकार बड़े दिन के अवसर पर अङ्गरेज़ लोग तरह-तरह के कार्ड और पत्र छपवाकर अपने मित्रों में बाँटते हैं। इन्होंने उस ढंग को एक नया रूप दिया। प्रतिवर्ष, एक नोट बुक प्रकाशित करते और उस पर छपवा देते कि 'हरिश्चन्द्र को न भूलिए' For get me not ये नोट बुक मित्रों में बाँटी जाती थीं।

इसी प्रकार एक और नई चाल निकाली थी। सातों वारों के लिए सात तरह के पत्रों के कागज़ छपवाए थे। सातों पर अलग-अलग कविताएँ लिखी रहती थीं। रविवार को एक रंग का कागज़ काम में लाते थे तो सोमवार को दूसरा और मंगलवार को तीसरा। इसी तरह सात रंग के कागज़ काम में लाते थे। रविवार को गुलाबी कागज़, सोमवार को श्वेत, मंगल को लाल, बुध को हरा, वृहस्पति को पीला, शुक्र को सफ़ेद और शनिवार को नीले काग़ज़ पर लिखते थे।

जिस तरह काग़ज़ों का रंग भिन्न-भिन्न होता था उसी तरह उन पर कविताएँ भी भिन्न भिन्न होती थीं। इनके जीवनी लेखक बाबू राधाकृष्ण-दासने उनकी कविताओं को अलग-अलग दिया है। हम भी उन्हें यहाँ दे

देना उचित समझते हैं। रविवार को कागज़ पर लिखा रहता था कि—

"भक्त कमल दिवाकरायनमः"

मित्र पत्र बिनु हिय लहत, छिनहूँ नहिं विश्राम।
प्रफुलित होत न कमल जिमि, बिनु रवि उदय ललाम॥

सोमवार के काग़ज़ पर यह छपा रहता था—

श्रीकृष्ण चन्द्रायनमः

'बन्धुन के पत्रहिं कहत, अर्ध मिलन सब कोय।
आपहु उत्तर देहु तौ, पूरो मिलनो होय॥
ससिकुल कैरव सोम जय, कलानाथ द्विजराज।
श्री मुख चन्द्र चकोर श्री, कृष्णचन्द्र महाराज॥

मंगल को 'मंगलं' भगवान् विष्णुं, वाला पूरा श्लोक रहता था, बुधवार को बुधिराधितचरणाय नमः के नीचे—

'बुधजन दर्पण में लखत, दृष्ट वस्तु को चित्र।
मन अनदेखी वस्तु को यह प्रतिबिम्ब विचित्र'

यह दोहा रहता था। बृहस्पतिवार को श्री गुरु गोविन्दाय नमः के नीचे—

"आशा असत पात्र प्रिय, विरहा तपहितछत्र।
बचन चित्र अवलम्बप्रद, कारज साधक पत्र॥

रहता था। शुक्र को 'कवि कीर्तियज्ञसे नमः' के नीचे—

"दूर रखत कज्जत आवरन, × × ×।
जानत अन्तर भेद जिय, पत्र पथिक रसरास'

यह छपा रहता था। इसी प्रकार शनिवार को 'श्रीकृष्णाय नमः' के नीचे—

औरै काज, लिखिन में, होइन लेखनि मन्द ।
मिलै पत्र उत्तर अवसि, यह विनवत हरिचन्द ॥

छपा रहता था ।

इसी तरह अलग-अलग मोनोग्राम भी बनवा रक्खे थे । सचमुच ये सब बातें नई थीं । देखकर इनकी सूझ की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जाता । जिस तरह पत्रों के लिखने में तरह-तरह के काग़ज़ काम में लाते थे उसी प्रकार लिफ़ाफ़ों पर भी 'उत्तर शीघ्र' आदि वाक्य लिख दिया करते थे ।

❀ ❀ ❀ ❀

सामाजिक विचार

देश तथा राजभक्ति

धर्म के मामले में यद्यपि ये अनन्य वैष्णव थे तथापि वे उन सामाजिक बुराइयों को हटाने के पक्ष में थे जो कालचक्र के प्रभाव से धर्म के नाम पर समाज की हानि करती थीं । ये शुद्ध और सच्चे महात्माओं के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे परन्तु ढकोसलों से इन्हें चिढ़ थी । ये ऐसे लोगों को ही पसन्द करते थे जो भीतर बाहर एक से हों । अपनी बुराइयों को छिपाने के लिए तरह-तरह के आडम्बरों के रचने वाले मनुष्यों से इन्हें घृणा थी । ये स्वयं अपने अवगुण कहने में नहीं हिचकते थे और न यह चाहते थे कि अन्य लोग भी ऐसा आचरण करें । श्रीकृष्ण के ये अनन्य उपासक थे । यद्यपि संसर्ग दोष से दो-एक औगुण इनमें आगए थे । परन्तु अन्य लोगों को ये उन औगुणों से दूर रहने का ही उपदेश देते थे ।

जो लोग स्वयं अपने स्वार्थ के लिये तो तरह-तरह के बुरे आचरण करते हैं और उनका संबंध धर्म से बताते हैं ऐसे लोगों से इन्हें कोई प्रीति नहीं थी । हिन्दू जाति में जो-जो बुराइयाँ इन्हें दृष्टिगोचर हुईं इन्होंने दिल खोलकर उनकी निन्दा की है ।

मांसाहारी लोग प्रायः धर्म के नाम पर ही हिंसा किया करते हैं। इन्हें ऐसे लोग भी पसन्द नहीं थे। इनका कहना था कि हिन्दू धर्म में कहीं भी हिंसा को स्थान नहीं है। जो लोग मांसाहार के पक्ष में तरह-तरह के श्लोक उद्धृत करते हैं वे भूलते हैं। उन श्लोकों का मर्म वे नहीं समझते! खींचातानी करके जो मन में आया वही अर्थ लगाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। ऐसे मांसाहारियों के लिए ही इन्होंने 'वैदिक हिंसा-हिंसा न भवति' 'नाटक की रचना की है'। इस नाटक को पढ़ने पर यह भलीभाँति ज्ञान हो जाता है कि इन्हें मांसाहार से कितनी चिढ़ थी। नाटक के अंत में इन्होंने ऐसे स्वार्थपरायण मनुष्यों की बड़ी ही दुर्दशा दिखाई है! थोड़ा-सा अंश यहाँ उद्धृत करना उचित प्रतीत होता है।

नाटक का नायक जो राजा है वह मांसाहारी और मदिरा पीने वाला है। उसके पुरोहित मुसाहिब, आदि सभी धूर्त और धर्म के नाम पर अधर्म करने वाले हैं। अंत में मरने पर सब के सब जब जम-पुरी में जाते हैं। तब धर्मराज पाखंडी पुरोहित के कर्म चित्रगुप्त से पूछते हैं। चित्रगुप्त उत्तर देते हैं—"महाराज सुनिए, यह शुद्ध नास्तिक है। केवल दंभ से यज्ञोपवीत पहने है। यह तो इसी श्लोक के अनुरूप है कि—

> अंतः शाक्ता बहिः शैवाः, सभा मध्ये च वैष्णवाः।
> नानारूप धराःकौला, विचरन्ति महीतले॥

"इसने कभी शुद्ध चित्त से ईश्वर पर विश्वास नहीं किया। जो-जो पक्ष राजा ने उठाए उसका समर्थन करता रहा और टके-टके पर धर्म छोड़ कर इसने मनमानी व्यवस्था दी। दक्षिणा मात्र दे दीजिए फिर जो कहिए उसी में पंडित जी की सम्मति है। केवल इधर उधर कमंडलाचार करते इसका जन्म बीता और राजा के संग से मांस

मद्य का भी बहुत सेवन किया। सैकड़ों जीव अपने हाथ से वध कर डाले।

यम०—अरे यह तो बड़ा दुष्ट है। क्या हुआ अब मुझसे काम पड़ा है। यह बचा जी तो ऐसे ठीक होंगे जैसा चाहिए।

इसी एक उदाहरण से इनके विचारों का भलीभाँति पता चलता कि मांसाहारी पाखंडियों से इन्हें कितनी चिढ़ थी। हिंसा करने वाला इनकी दृष्टि में सदा निन्दनीय था! जैसा कि निम्न दोहों से प्रकट है।

वृथा जवन को दूस हीं, करि वैदिक अभिमान।
जो हत्यारो सोइ जवन, मेरे एक समान॥

❀ ❀ ❀ ❀

धिक-धिक ऐसो धर्म जो, हिंसा करत विधान।
धिक-धिक ऐसे स्वर्ग जो, बध करि मिलत महान॥

इनकी यह उत्कट अभिलाषा थी कि हिन्दू धर्म में जो समय के फेर से बुराइयाँ आगई हैं वे समूल नष्ट हो जाँय और वही संसार का शिरोमणि सच्चा हिन्दू धर्म फिर हो जाय। हिन्दुओं के आपस के कलह, बैर, ईर्षा, द्वेष एक दूसरे से घृणा आदि अवगुणों को देख कर ये बड़े दुखित होते थे। 'भोल देवी' में इन्होंने लिखा है कि—

इत कलह विरोध सबन के हिय घर करि है।
मूरखता को तम चारहुँ ओर पसरि है।

❀ ❀ ❀ ❀

वीरता एकता ममता दूर सिधरिहै।
तज उद्यम सब ही दासवृत्ति अनुसरि है॥

❀ ❀ ❀ ❀

अपनी वस्तुन कहं लखि हैं सबहि पराई।
निज चाल छोड़ि गहि हैं औरन की धाई॥

❀ ❀ ❀ ❀

रहे हमहुँ कबहुँ स्वाधीन आर्य बलधारी।
यह देहे जिय से सब ही बात बिसारी॥

एकता और संगठन के ये बड़े पक्षपाती थे। इनका विचार था कि हिन्दुओं की यह वर्त्तमान दुर्दशा आपस में एकता न रहने ही से हुई है। आपस में एक दूसरे के ऊपर आक्षेप, एक दूसरे के सम्प्रदाय की निन्दा करना ही हिन्दुओं ने अपना उद्देश्य बना लिया है।

स्वयं तो यह उद्यमशील और हर समय किसी न किसी कार्य में लगे रहते थे। साथ ही यह दूसरों को भी यही आदर्श की शिक्षा देते थे। आलस्य को भी यह हिन्दुओं की दुदर्शा का एक प्रधान कारण मानते थे।

'भारत दुर्दशा' में इन्होंने आलसियों की अच्छी खिल्ली उड़ाई है। 'दुनिया में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा। मर जाना व उठ के कहीं जाना नहीं अच्छा'

शीर्षक कविता इन्होंने घोर आलसियों के लिए ही लिखी है।

वर्त्तमान समय में धर्म की जो अवनति हुई है उसे देख इन्हें मार्मिक कष्ट होता था। संसार सच्चे महात्माओं का आदर न कर प्रायः बने हुए पाखंडियों का ही अधिक आदर करता है। ऐसे ही लोगों के सम्बन्ध में इन्होंने लिखा है कि—

सांचे मारे-मारे डोलैं।
छली दुष्ट सिर चढ़ि-चढ़ि बोलैं॥

❀ ❀ ❀ ❀

छलियन के एका के आगे।
लाख कहौ एकहु नहिं लागे॥
भीतर होहि मलिन वा कोरा।
चहिए बाहर रंग चटकोरा॥

अविद्या के प्रभाव से हिन्दू धर्म में जो भूत-प्रेत और पिशाचादि की पूजाएं चल पड़ी हैं इसके ये घोर विरुद्ध थे। ये इन सब को हिन्दू-धर्म की अवनति मानते थे। अपने इन विचारों का भी इन्होंने कई पुस्तकों में वर्णन किया है। "ह्वै हैं इनके सब भूत पिशाच उपासी" ❀❀ 'भूत प्रेतादि पुजाई' आदि पद्यांश इनके हृदय के उद्गार हैं।

काशी जैसे पवित्र धाम की, जो किसी समय संसार का विद्या केन्द्र समझा जाता था, अवनति देख ये बड़े दुःखित होते थे। जिस काशी में ऐसे-ऐसे विद्वान् हो गए हैं और इस गए गुजरे ज़माने में भी हैं उस काशी में तरह-तरह के अनाचार फैलें यह सचमुच दुःख की बात है। काशी की दयनीय दशा देखकर ही इनके मुँह से पद्य निकले हैं :—

आप काम कुछ कभी करैं नहिं कोरे रहै उपासी।
और करें तो हँसै, बनावें उसको सत्यानासी॥

❀ ❀ ❀

साहब के घर दौड़े जावें, चन्दा देहिं निकासी।
चढ़ै बुखार नाम मंदिर को, सुनतहि होय उदासी॥

❀ ❀ ❀

काम कथा अमृत सो पीयैं समुझैं ताहि विलासी।
राम नाम मुंह से नहिं निकलै, सुनतहि आवै खांसी॥

संसार के पापों को हरनेवाली 'रवासी परकासी चन्द्रिकासी जाके वासी अविनासी अघनासी ऐसी कासी' की यह दुर्दशा सचमुच इन्हें व्यथित करती थी।

अपने देश के ये परमभक्त थे। भारतवर्ष की वर्त्तमान दुर्दशा देख इन्हें बड़ा क्लेश होता था। आलस्य, मदिरापान, आपस में फूट, निरुद्यमता, स्वार्थपरता, पक्षपात, हठ आदि दुर्गुणों को ही ये भारतवर्ष की अवनति का प्रधान कारण समझते थे। विशेषकर फूट को तो दुर्दशा का मुख्य कारण मानते थे। जैन, बौद्ध, सिक्ख, यहाँ तक कि शिव और वैष्णवों तक में आपस में विरोध विद्यमान हैं। एक दूसरे के साहित्य की रक्षा न कर उसे मिट्टी में मिला देने में ही गौरव समझते हैं। 'हमारे वैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी' आदि पद्य इनके मुख से आपस के विरोध को देखकर ही निकल पड़े हैं।

इनका विचार था कि संतोष के दुरुपयोग ने ही भारतीयों को निरुद्यमी बना दिया है। संतोष का अर्थ वे लोग निरुद्यम समझ बैठे हैं। 'संतोष' के इसी दुरुपयोग को लक्ष्य में रखकर इन्होंने भारत-दुर्दशा में एक जगह लिखा है कि, "महाराज फिर संतोष ने भी बड़ा काम किया (भारत को बिगाड़ने में) राजा प्रजा सबको अपना चेला बना लिया ! अब हिन्दुओं को खाने मात्र से काम, देश से कुछ काम नहीं। 'राज न रहा। पेन्शन ही सही। रोजगार न रहा, सूद ही सही। वह भी नहीं तो घर का ही सही'। 'संतोष परम सुख' रोटी ही को सराह-सराह के खाते हैं। उद्यम की ओर देखते ही नहीं। निरुद्यमता ने संतोष को बड़ी सहायता दी। इन दोनों को बहादुरी का मेडल जरूर मिले। व्यापार को इन्होंने मार गिराया।"

अपने देश के ये जितने भक्त थे उतने ही ये राजभक्त भी थे। अंग्रेज़ों के राज्य को ये भारत की उन्नति का कारण समझते थे। 'भारत-भिक्षा', 'मुँह दिखावनी' 'भारत-वीरत्व' आदि कई राजभक्ति सूचक ग्रन्थों की रचना भी इन्होंने की है।

हिन्दुओं में प्रायः प्रत्येक जाति के लोग अपनी-अपनी अवस्था और हैसियत के अनुसार शादी विवाह के अवसर पर फ़ज़ूलख़र्ची किया

करते हैं। यहाँ तक बहुतेरे तो क्षणिक वाह-वाही के लिए कर्ज़ तक लेकर अपना सर्वस्व-स्वाहा कर देते हैं। ये ऐसे ख़र्चों के बड़े विरोधी थे। हिन्दू शास्त्रानुसार जो व्यय आवश्यक है उसके सिवा अन्य व्ययों के हामी न थे।

फ़ज़ूलख़र्ची के अतिरिक्त विवाह के अवसर पर हिन्दुओं में तरह-तरह की गालियाँ गाने की भी प्रथा है। समय के फेर से इस प्रथा ने अब बहुत विकट रूप धारण कर लिया है। जिन गालियों का उद्देश्य पहले मधुर हृदय को प्रसन्न करने वाले परिहासों का था उनका उद्देश्य अब सम्बन्धियों को खरी-खोटी और अश्लील से अश्लील बातें सुनाना रह गया है। इस प्रथा को बहुत बुरा समझते थे। यहाँ तक कि इन्होंने अपनी कन्या के विवाह में गाली गाने की मनाई कर दी थी। इनके इस साहस से इनके मित्र बड़े प्रसन्न हुए। बहुतों ने इनकी प्रशंसा करते हुए पत्र भी लिखे थे।

इसी प्रकार ये बाल-विवाह के भी बड़े विरोधी थे। छोटे-छोटे बालकों की—जिन्हें यह भी नहीं मालूम कि विवाह क्या वस्तु है—शादी कर देना इनकी राय में बालकों के जीवन को नष्ट कर देना था। इसके लिए ये प्रायः आन्दोलन किया करते थे।

धर्म सम्बन्धी विचार

ये धार्मिक भी बड़े पक्के थे। श्रीवल्लभ कुल के अनन्य वैष्णव थे। 'हम तो मोल लिए या घर के' आदि कविताओं से इनकी अनन्यता प्रकट होती है। भगवान् श्रीकृष्ण के गुणगान करते-करते भी न अघाते थे। इनका विचार था कि साधारण मनुष्य को इस संसार में आकर साँसारिक कार्यों में लगना तो पड़ता ही है। क्योंकि यह मायाजाल ऐसा ही है। परन्तु साँसारिक कार्यों में लगे रहने पर भी धर्म को न

भूलना चाहिए। धर्म को सदा "रसखान गोविन्दहि यों भजिए, जिमि नागरि को चित गागरि में' की तरह याद रखना चाहिए।

इनकी अनन्यता प्रकट करने वाला एक पद ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। निम्न पद और कवित्तों या सवैयों से भलीभाँति ज्ञात हो जायगा कि ये कैसे अनन्य भक्त थे :—

"हम तो श्री बल्लभ को जानैं।
सेवत बल्लभ पद पंकज को बल्लभ ही को ध्यानैं॥
हमरे मात पिता गुरु बल्लभ और नहीं उर आनैं।
हरीचंद बल्लभ पद बल सों इन्द्रहु कों नहिं मानैं॥

और

भजौं तो गुपाल ही को सेवौं तो गुपालै एक,
मेरो मन लाग्यो सब भाँति नन्दलाल सों।
मेरे देव देवी गुरु मात पिता बन्धु इष्ट,
मित्र सखा हरिना तो एक गोप बाल सों।
हरीचंद और सों न मेरो सम्बन्ध कछू,
आसरो सदैव एक लोचन बिसाल सों॥
माँगौं तो गुपाल सों न माँगौं तो गुपाल ही सों,
रीझौं तो गुपाल ही पै खीझौं तो गुपाल सों॥

पूजि के कालिहिं सत्रुह तो, कोऊ लच्छमि पूजि महाधन पाओ।
सेइ सरस्वति पंडित होहु, गनेसहिं पूजिकै विघ्न नसाओ॥
त्यौं हरिचन्द जू ध्याय शिवै कोउ चारि पदारथ हाथहिं लाओ।
मेरे तो राधिका नायक ही गति लोक दोऊ रहो कै न सिजाओ॥

❀ ❀ ❀ ❀

पूजिहों देवि न देव कोऊ किन वेद पुरानन ऊँचे पुकारौ।
काहू सों काम नहिं कछु मोंहि, सबै अपनी अपनी को सम्हारौ॥

हौ वनिहौं कि नसाइहौं यासों, यहै प्रन है हरिचंद हमारौ।
मानिहौं एक गुपालहिं कौ, नहिं और के बापको जामें इजारौ॥

इतने अनन्य भक्त होते हुए भी इन्हें अन्य सम्प्रदायों से कोई द्वेष न था। हिन्दू धर्मान्तर्गत जितने सम्प्रदाय हैं ये सबको श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। अनन्यता भी भक्त का एक गुण है। गोस्वामी तुलसीदास जी अनन्य रामोपासक थे। यहाँ तक कि ब्रज में पहुँच कर उन्होंने कह ही दिया था कि :—

कहा कहौं छवि आज की, भले बने हौ नाथ।
तुलसी मस्तक जब नवै, धनुष बान लो हाथ॥

इसी तरह सूरदास जी अनन्य बालरूप के उपासक थे।

परिवार और मित्र

वंश परिचय में इनके परिवार का साधारण परिचय तो हो ही चुका है। यहाँ पर इनकी सन्तान और मित्र वर्गों का कुछ हाल लिखना उचित है। सन्तान इनके तीन हुईं। दो पुत्र हुए और एक कन्या। दैवेच्छा से दोनों ही पुत्र बाल्यावस्था में परलोक सिधारे। हाँ कन्या विद्यावती को परमात्मा ने जीवित रखा। इनके पाँच पुत्र अभी वर्त्तमान हैं। विद्यावती जी का स्वर्गवास हो चुका है। इनके अनुज बाबू गोकुल-चन्द्र जी भी बड़े विद्यारसिक और विद्वान व्यक्ति थे। इनके दो पुत्र अभी वर्त्तमान हैं। दोनों ही सुशील और सच्चरित्र हैं।

मित्र तो इनके असंख्य थे अथवा यों कहना चाहिए कि इनका कोई शत्रु था ही नहीं। इनसे कोई शत्रुता भले ही मानता हो पर ये किसी को अपना शत्रु नहीं मानते थे। यहाँ तक कि जिनसे विचारों में घोर मत भेद होता था उनसे भी ये द्वेष नहीं रखते थे। राजा महाराजा, रईस, विद्वान, देशी, विदेशी इनके मित्रों में सभी प्रकार के व्यक्ति थे।

राजा महाराजाओं में महाराणा उदयपुर, काशी नरेश श्रीमान राजा विजयानगरम्, राजा छत्रपुर, महाराज डुमरांव, बेगम भूपाल महाराजा भरतपुर और मझौली नरेश, इन्हें बहुत मानते थे। श्रीमान महाराणा मेवाड़ाधिपति सज्जन सिंह तो इन्हें अपने सगे की तरह मानते थे। इनकी काव्य-कुशलता पर बड़े प्रसन्न थे। जब दरबार होता था—कवियों का सम्मेलन होता था तो वे इन्हें आदर पूर्वक अवश्य बुलाते थे। इसी प्रकार काशी नरेश भी इन्हें अपने घर का आदमी समझते थे और इन पर बड़ा ही स्नेह करते थे। महाराजा विजयानगरम् ने एक बार प्रसन्न होकर इन्हें पाँच हज़ार का पुरस्कार दिया था। बेगम भूपाल इन्हें बराबर अपनी बनाई हुई कविताएँ भेजा करती थीं।

विद्वानों में श्री द्वारिका नाथ विद्या भूषण, प्रसिद्ध उपन्यास लेखक श्रीबंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र; श्री कृष्णदास पाल, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, हेमचन्द्र बैनर्जी, श्री गणेश वासुदेव जोशी, श्री नवीनचन्द्र राय, अतरसिंह भदौरिया, केशवचन्द्र सेन, पंडित प्रतापनारायण मिश्र, राजालक्ष्मण सिंह, पंडित शीतला प्रसाद त्रिपाठी, पंडित बद्रीनारायण चौधरी, पंडित दामोदर शास्त्री, श्री पंडित रमाशङ्कर व्यास और साहित्याचार्य पंडित अम्बिकादत्त व्यास के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये सभी विद्वान इनका बड़ा आदर करते थे।

विदेशी विद्वान् भी इनका बड़ा आदर करते थे। डाक्टर ग्रियर्सन तो इनकी योग्यता पर बड़े ही मुग्ध थे। इनकी योग्यता की प्रायः प्रशंसा किया करते थे। उसी प्रकार फ्रडरिक पिनकाट महोदय इनका बड़ा सम्मान करते थे। हिन्दी के ये बड़े विद्वान् थे। विदेशी होने पर भी इनकी हिन्दी योग्यता को देखकर आश्चर्य होता है। हिन्दी में अच्छी तरह लिख पढ़ सकते हों यही बात नहीं प्रत्युत वे हिन्दी में

कविता भी कर लेते थे। निम्न सोरठा उन्होंने बना कर इनके पास भेजाथा—

वैस वंस अवतंस; श्रीबाबू हरिचंद जू।
छीर नीर कल हंस, टुक उत्तर लिख देव मोहि ॥

इसी प्रकार भारतवर्ष के बाहर अमेरिका आदि देश के लोग भी इन्हें बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। और इन्हें Poet Laureate (राजकवि) कहा करते थे।

जनता द्वारा सम्मान

ऐसे प्रतिभाशाली अलौकिक विद्वान् का जनता द्वारा सम्मान होना आश्चर्य की बात नहीं है। जो यथार्थ गुणी होते हैं, लोग उनका सम्मान अवश्य करते हैं।

देश विदेश में इनका सम्मान देख कर इनके भारतीय मित्रों को यह बात खटकी कि जिस महाकवि को विदेशी लोग Poet Laureate कहते हैं और हरेक प्रकार का सम्मान करते हैं उसके प्रति हम इतने उदासीन हैं। जो व्यक्ति हमारे देश का गौरव है उसका हमने अब तक कुछ भी सम्मान नहीं किया। धीरे-धीरे इनके मित्र-वर्गों में यह चर्चा चली कि इन्हें किसी उत्तम 'उपाधि से भूषित करना चाहिए। अतः सन् १८८० के २७ सितम्बर के 'सार सुधानिधि' में इनके परम मित्र पंडित रमाशंकर जी व्यास ने एक प्रस्ताव प्रकाशित कराया। उस प्रस्ताव में उन्होंने लिखा था कि इन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि देनी चाहिए।

मित्र वर्ग जो चाहता था वही हुआ। सबों ने इस प्रस्ताव का बड़े हर्ष के साथ समर्थन किया। उसी दिन से इनके मित्र तथा तत्कालीन समाचार पत्र इन्हें भारतेन्दु लिखने लगे। इनकी इस उपाधि को देशी विद्वानों ने ही नहीं विदेशी विद्वानों ने भी मुक्त कंठ से स्वीकार किया। इनके परम स्नेही डा० ग्रियर्सन ने The Modern Literary

History of Hindustan में लिखा था कि—" The boy was educated at queen's college, Benares and commenced to write from an early age. In the year 1880 so great had his fame extended that he was given the title of "Bhartendu" moon of India by the unanimous consent of all the editors of vernacular papers of India."

अर्थात् इस बालक (हरिश्चन्द्र) ने बनारस के क्वीन्स कालेज में शिक्षा पाई और यह बालक बालकपन से लिखने लगा। सन् १८८० तक इस का यश यहाँ तक फैला कि भारतीय पत्रों के सभी सम्पादकों ने एक राय होकर इसे भारतेन्दु अर्थात् भारत के चन्द्रमा की उपाधि दे डाली।

हिन्दी के लिए उद्योग

ऊपर लिखा जा चुका है कि हिन्दी की इन्होंने कैसी सेवा की। उसके लिये किस प्रकार अपना सर्वस्व स्वाहा कर डाला। इनके पहले जो हिन्दी लिखी जाती थी उसका उल्लेख भी किया जा चुका है।

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द उन दिनों हिन्दी के लेखकों में गिने जाते थे परन्तु उनकी भाषा उर्दू प्रधान थी। हिन्दी के अक्षर-मात्र जरूर रहते थे। इन्होंने जिस गद्य को लिखना आरम्भ किया उसे सभी लोगों ने अपनाया। तत्कालीन लेखकों में राजा लक्ष्मणसिंह की भाषा भी शुद्ध हिन्दी कही जा सकती है। जिस हिन्दी भाषा के बोलने वाले भारतवर्ष में सब से अधिक और संसार में सब स्थानों में हों उस भाषा के बोलने वाले अपनी मातृभाषा को भूले रहें यह इन्हें खटकता था। हिन्दी का पद्य साहित्य तो पहले से ही भरा पूरा था। गद्य की ओर इन्होंने विशेष ध्यान दिया। फलस्वरूप जिस गद्य का इन्होंने हमारे सामने आदर्श रखा उसकी जो उन्नति हो रही है—उसका सारा श्रेय

इन्हीं को है। इनका हिन्दीप्रेम देखकर ही 'The Modern Literary History of Hindustan' में डाक्टर ग्रियर्सन साहब ने लिखा है कि "The Most celebrated of the native poets of the present day. He has done more for the popularisation of vernacular literature than almost any living Indian. He himself was a prolific author in many styles and he excelled in all."

अर्थात् वर्त्तमान समय में जितने कवि हैं ये उनमें सब से प्रसिद्ध हैं। अपनी मातृ-भाषा के प्रचार के लिए जितना उद्योग इन्होंने किया है उतना वर्त्तमान भारतीय विद्वानों में से किसी ने नहीं किया।

यह स्वयं अनेक ढंग के ग्रन्थ लिखने वाले थे और उनके लिखे हुए ग्रन्थ अन्य विद्वानों की अपेक्षा उत्तम होते थे।"

जिस हिन्दी भाषा को भारत के निष्पक्ष विद्वानों ने मुक्त कंठ से सराहा और 'The Most important of all the vernacular dialects of India." 'भारतीय भाषाओं में सब से उपयोगी' लिखा है उसके प्रति वे ही लोग उदासीन थे, जो उसके बोलने वाले थे, जिनकी वह मातृ-भाषा थी। इन्होंने हिन्दी के गुणों को जनता के सामने रखा। उन्हें दिखाया कि उनकी मातृ-भाषा कैसी है। देश-विदेश के विद्वानों की उसके सम्बन्ध में कैसी श्रद्धा है। इतना ही नहीं स्वयं भी उसकी उन्नति में लगे और अपने अल्प जीवन में जो हिन्दी के लिए कर गए उसको प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी जानता है।

इन्होंने अदालतों में भी हिन्दी को स्थान दिलाने की चेष्टा की थी परन्तु उर्दू-भक्तों के कारण इन्हें सफलता न मिली।

भ्रमण

इनकी जगदीश यात्रा का उल्लेख पहले किया जा चुका है। वह इनकी पहली यात्रा थी। उस यात्रा के अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के अनुभवों की चर्चा भी हम कर चुके हैं। उस समय ये बालक ही थे। इसके बाद कुछ अवस्था और बढ़ी तब इन्हें अन्य देशों के देखने की और भी अभिलाषा हुई। सच भी है जो लोग देशाटन नहीं करते, तरह-तरह के लोगों से जिनका मिलना नहीं होता, उनका ज्ञान बहुत ही सङ्कुचित होता है। ज्ञान सञ्चय और अनुभव के लिए देशाटन करना अत्यन्त आवश्यक है। यद्यपि यह सभी मनुष्यों के लिए सम्भव नहीं है। परन्तु जिन्हें परमात्मा ने इस योग्य बनाया है उन्हें तो देशाटन अवश्य ही करना चाहिए।

इन्हें अपनी पहली ही यात्रा में जो लाभ हुआ था उसका उल्लेख हम कर चुके हैं। बंगाल के उन्नतिशील साहित्य को देख इन्हें अपनी मातृ-भाषा की ओर और भी अधिक रुचि पैदा हुई थी। साथ ही बंगला के अभ्यास का वहीं से श्रीगणेश हुआ।

दूसरी बार सं० १९२२ में ये बुलन्दशहर और कुचेसर गये। इस यात्रा में कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं हुई।

तीसरी बार सं० १९२८ में (सन् १८७१) इन्होंने चुनार, कानपुर, लखनऊ, सहारनपूर, मन्सूरी, हरिद्वार, लाहौर, अमृतसर, दिल्ली, आगरा आदि स्थानों की यात्रा की। इन स्थानों की यात्रा करने में इन्हें तैंतीस दिन लगे थे। जैसा इन सब स्थानों के नामों का उल्लेख करते हुए इन्होंने स्वयं एक पद्य के अन्त में लिखा है कि—"तैंतीस दिवस में यातरा यह किन्हीं हरिचन्दवर"।

चौथी बार सं० १९३४ (सन् १८७७) में पुष्कर और प्रयाग की यात्रा की। पुष्कर क्षेत्र में तो ये स्नान और दर्शनादि के लिए गए

परन्तु प्रयाग में हिन्दी वर्द्धिनी सभा की ओर से बुलाये गये थे। यहाँ जो व्याख्यान इन्होंने दिया था वह सम्पूर्ण कविता में था।

> निज भाषा उन्नति यहै, सब उन्नति को मूल।
> बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥

यह दोहा उसी समय बनाया गया।

पाँचवी बार सं० १९२६ (१८७९ ई०) में सरयूपार की यात्रा की। इस यात्रा में इन्हें बड़े-बड़े कष्ट उठाने पड़े। खाने-पीने की जितनी चीज़ें मिलीं सब बे स्वाद। इन्होंने स्वयं यहाँ के कष्टों का उल्लेख किया था। बाबू शिवनन्दन सहाय ने इनके लिखे हुए वाक्यों को उद्धृत किया है। उसी से हम थोड़ा अंश देना उचित समझते हैं। इन्होंने लिखा था कि "बालू साही सचमुच बालू साही, भीतर काठ के टुकड़े भरे हुए। बरफ़ी अहा हा हा, गुड़ से भी बुरी। लाचार चने पर गुज़र करनी पड़ी।"

इसी यात्रा में बस्ती गये। बस्ती का वर्णन करते हुए इन्होंने लिखा था कि "बाहरी बस्ती, अगर बस्ती इसी को कहते हैं तो उजाड़ किसको कहेंगे।

बस्ती और बैसवारे की यात्रा करते हुए ये मेंहदावल गये। यहाँ इन्होंने एक नये मत के मानने वाले लोगों को देखा। इस मत के मानने वाले प्रणामी कहलाते हैं। उपासना तो ये भगवान् श्रीकृष्ण की करते हैं, पर हैं मूर्त्तिपूजा के विरोधी। यहाँ तक कि "मदीनाः श्याम शरदः शतं" आदि श्लोक खंडों को कहकर वेदों में मक्के मदीने का वर्णन भी बतलाते हैं। यात्रा करने से ही इन्हें ये नई-नई बातें देखने को मिलीं। कूप मण्डूकत्व में ये सब नए-नए अनुभव कहाँ। भिन्न-भिन्न देशों के भिन्न लोगों से मिलने-जुलने से ज्ञान और बुद्धि का विकास होता है। साथ ही तरह-तरह के अनुभव होते हैं।

मेंहदावल के बाद जनकपूर गये। इस यात्रा का वर्णन भी इन्होंने बड़े मनोरञ्जक शब्दों में किया है। बाबू शिवनन्दन सहाय जी कृत जीवनी में उसका पूरा विवरण दिया गया है। हम उसमें से कुछ अंश यहाँ देना उचित समझते हैं। ये सेकेंडक्लास में जा रहे थे। जिस दर्जे में ये बैठे थे उसमें कुछ यूरोपियन भी थे। उसी का वर्णन करते हुए इन्होंने लिखा है कि राह में रेल में कुछ कष्ट हुआ क्योंकि सेकेंरड क्लास में तीन-चार अंग्रेज़ थे। बस उनमें अकेला 'जिमि दसनन में जीभ बेचारी' कष्ट हुआही चाहे……जैसी ही उन्हें पान सुरती की पचापच से नफ़रत वैसी ही इधर चुरुट के धूम से।………………
अबकी बरसात में सेकेंड क्लास में एक साहब सोये हुए थे मैं भी उसी में था। पानी की कुछ बौछार भीतर आई साहब ने जानकर पूछा "Have you made water? मैंने कहा Not I, but God.

इसी जनकपुर की यात्रा में इन्होंने 'जयति जयति जय जनकलली। मिथिलापुर मंडनि महरानी। निमिकुल कमलकली' यह पद बनाया। इसके अतिरिक्त अन्य कविताओं और सीतबल्लभ स्तोत्र। आदि की रचना की थी।

छठी बार सं० १८८० में वैद्यनाथ धाम की यात्रा की। इस यात्रा में काशी नरेश भी इनके साथ थे। इस यात्रा का वर्णन भी इन्होंने बड़े रोचक शब्दों में किया था। लिखा था कि "………………
राह में आज पेड़ों में इतने जुगनू थे कि पेड़ सचमुच सर्वे चिराग़' बन रहे थे। सेकेंड क्लास की गाड़ी ऐसी टूटी-फूटी जैसी हिन्दुओं की क़िस्मत और हिम्मत।

सातवीं बार सन् १८८२ में मेवाड़ गये। यहाँ ये महाराजाधिराज महाराणा सज्जन सिंह के दरबार में गये। वहाँ जाकर इन्होंने अपनी जो काव्य कुशलता दिखाई, समस्याओं की पूर्ति की, उसका उल्लेख किया जा चुका है।

आठवीं बार सन् १८८४ में बलिया इन्स्टिट्यूट द्वारा बुलाये गये। वहाँ पर जाकर एक बड़ा सुन्दर व्याख्यान दिया था। वहाँ के जिलाधीश उसके सभापति थे। उन्होंने इनके व्याख्यान की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

ग्रन्थ

इनके लिखे अनुवादित तथा संग्रह किये हुये छोटे बड़े कुल मिलाकर दो सौ के ऊपर ग्रन्थ हैं। १७५ इनके स्वयं लिखे हुए और अनुवादित हैं। ३५ वर्ष की अल्पावस्था में इतने ग्रन्थ लिखना कम आश्चर्य की बात नहीं है। अलौकिक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति ही ऐसा कर सकते हैं। ग्रन्थों की संख्या से ही हम अनुमान कर सकते हैं कि इनमें लिखने की कैसी अलौकिक शक्ति थी। परमात्मा इन्हें पूर्ण आयु देता तो यह हिन्दी भाषा का भण्डार कितना पूर्ण कर देते, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

इनके पहले हिन्दी में नाटकों का अभाव साही था। नाम मात्र के लिए एक दो नाटक लिखे भी गए थे, परन्तु उनमें राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवादित शकुंतला नाटक को छोड़ शेष नाटक बस नाम के ही नाटक थे। अतएव इस दृष्टि से हिन्दी नाटकों के ये पहले लिखने वाले हुए! हिन्दी के इस अङ्ग की पूर्ति पहले पहल इन्होंने ही की।

इन्होंने कुल मिलाकर २० नाटक लिखे और अनुवाद किये। इनमें नव-मल्लिका और मृच्छकटिक अभी तक अप्रकाशित हैं। शेष नाटकों का संग्रह खड्ग विलास प्रेस और इंडियन प्रेस द्वारा नाटकावली के नाम से प्रकाशित हो चुका है जो नाटक प्रकाशित हुए हैं उनमें भी रत्नावली, प्रेमयोगिनी ये अपूर्ण है।

इन्हें अधूरा छोड़ कर ही ये परलोक सिधार गए। कुछ नाटकों का थोड़ा-सा विवरण यहाँ दिया जाता है।

इनके नाटकों में विद्या-सुन्दर, पाखंड-विडंबन; धनञ्जय-विजय, कर्पूर मंजरी, मुद्राराक्षस, रत्नावली, और दुर्लभ बन्धु, ये भिन्न-भिन्न भाषाओं द्वारा अनुवाद किये गये हैं। शेष इनके लिखे मौलिक ग्रन्थ हैं।

इनमें विद्यासुन्दर इनकी सब से पहली रचना है। यह बंगला नाटक विद्या सुन्दर का अनुवाद है। सन् १८७२ ई० में पाखंड विडम्बन का अनुवाद किया। यह प्रबोध चन्द्रोदय नाटक के तीसरे अङ्क का अनुवाद है। इसमें यह दिखाया गया है कि ऊपरी पाखंडों से सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती। सच्ची शान्ति श्रद्धा-युक्त हरि-भक्ति से ही मिलती है। धनञ्जय विजय संस्कृत कवि कांचन के संस्कृत नाटक का अनुवाद है। इसमें अर्जुन द्वारा कौरवों के गोहरण करने, गौओं की जो रक्षा की गई थी उसी कथा का वर्णन है। कर्पूर मंजरी एक प्राकृत नाटक का और मुद्राराक्षस महाकवि विशाखदत्त के नाटक का अनुवाद है। मुद्राराक्षस में कूटनीतिज्ञ चाणक्य और महामन्त्री राक्षस की जो चोटें चली हैं उनका दिग्दर्शन है। दुर्लभ बन्धु अँग्रेजी के मर्चेन्ट आफ़ वेनिस (Marchant of venice) का अनुवाद है।

मौलिक नाटकों में वैदिकीय हिंसा हिंसा न भवति की रचना संवत् १९३० में हुई।

इसमें मांसाहारियों की अंत में क्या दुर्गति होती है यह दिखाया गया है। इस नाटक का कुछ परिचय हम पीछे दे चुके हैं।

'सत्य हरिश्चन्द्र' में महाप्रतापी सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का वर्णन है। इनके लिखे मौलिक नाटकों में यह सर्वश्रेष्ठ है। तीसरे अंक में काशी और गंगाजी का जो वर्णन है वह पढ़ने ही योग्य है। काशी के वर्णन में इन्होंने अपने पिता बाबू गोपाल चन्द (गिरिधर दास) के जो सवैया और कवित्त दिये हैं वे बहुत सुन्दर हैं। उदाहरण स्वरूप एक सवैया यहाँ दिया जाता है।

"चारहुँ आश्रम बर्न बसैं मनि, कंचन धाम अकास बिभासिका।
सोभा नहीं कहि जाय कछू, बिधि ने रची मानो पुरीन की नासिका॥
आपु बसैं गिरिधारन जू तट, देव नदी वर वारि बिलासिका।
पुन्य प्रकाशिका, पापबिनासिका, हीयहुलासिका, सोहति कासिका॥

गंगा जी का वर्णन इन्होंने स्वयं किया है। उसके भी दो एक छन्द दे देना अनुचित न होगा।

नव उज्वल जलधार, हार हीरक सी सोहति।
बिच-बिच छहति बूंद, मध्य मुक्ता मनि पोहति॥
लोल लहर लहि पवन एकपै इक इमि आवत।
जिमि नरगन मन विविध मनोरथ करत मिटावत॥

❁ ❁ ❁

कहूँ बँधे नववाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी कहुँ मढ़ी बढ़ी मन मोहतजोहत॥

❁ ❁ ❁

दीठि जहीं जहँ जाति रहति तितहीं ठहराई।
गंगा छबि हरिचन्द, कछू बरनी नहिं जाई॥

आगे चल कर जब राजा और रानी शैव्या अपने छोटे कुमार रोहिताश्व के साथ काशी की गलियों में घूमते हैं वह दृश्य बड़ा करुणा-जनक है। रानी शैव्या ने जब अपने शरीर को उपाध्याय के हाथ बेच दिया है और वे अपने शिष्य को उन्हें साथ लाने के लिए छोड़ गये हैं तब वह रानी से जल्दी चलने का अनुरोध करता है। बालक माता का अंचल पकड़ कर रोकता है। शिष्य जल्दी करने के लिए बालक को ढकेल देता है। बालक गिर कर रोता है और पिता की ओर करुणा-भरी दृष्टि से देखता है। परन्तु ऐसे समय भी हरिश्चन्द्र विचलित नहीं होते! कहते हैं—'ब्राह्मण देवता, बालकों के अपराध से नहीं रुष्ट होना।

इस प्रकार नाटक के अंत में जब रोहिताश्व की मृत्यु हो जाती

है और रानी शैव्या उसकी मृत देह को श्मशान में लेकर आती है, उस समय भी हरिश्चन्द्र का धैर्य और सत्यनिष्ठ दिखने योग्य है।

अपने पुत्र और रानी शैव्या को पहचान कर भी वे अपने सत्य पर दृढ़ रहकर कहते हैं कि—"..................चलो रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कम्बल हमको दो" रानी उत्तर देती है कि:—"नाथ मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था, अपना आँचल फाड़ कर इसे लपेट लाई हूँ। उसमें से भी जो आधा दे दूँगी तो यह खुला रह जायगा"। परन्तु हरिश्चन्द्र फिर भी विचलित नहीं होते। कहते हैं—"... ...जिस हरिश्चन्द्र ने उदय से अस्त तक की पृथ्वी के लिए धर्म न छोड़ा, उसका धर्म आधगज कपड़े के वास्ते मत छुड़ाओ"।

'विषस्य विषमौषधं' में महाराज मल्हरराव गायकवाड़ के राजच्युत किए जाने का वर्णन है।

'श्रीचन्द्रावली नाटिका' में चन्द्रावली नामक गोपिका का श्रीकृष्ण के प्रति जो अनन्य प्रेम है उसी का वर्णन किया है। सत्य हरिश्चन्द्र में, इन्होंने जिस प्रकार गंगाजी का वर्णन किया है उसी प्रकार इस नाटिका में यमुना-वर्णन किया है। यह भी बहुत सुन्दर है। प्राकृतिक दृश्य वर्णन करने में ये बड़े ही सिद्ध हस्त थे। यमुना वर्णन का एक पद्य यहाँ दिया जाता है।

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहु सुहाए॥
किधौं मुकुर मैं लखत सब निज-निज शोभा।
कै प्रनवत जलजानि परम पावन फल लोभा॥
मनु आतप-बारन तीर कों, सिमिटि सबै छाए रहत।
कै हरिसेवा हित नै रहे, निरखि नैन मन सुख लहत॥

'नीलदेवी' में एक मुसलमान सेनापति अबदुरशरीफ़ ख़ाँ द्वारा पंजाब के सरदार सूर्यदेव को धोखे से हराने और उनकी पत्नी नीलदेवी द्वारा पति के बदला लेने का उल्लेख है। यह वीररस-प्रधान नाटक है। महाराज सूर्यदेव अपने सर्दारों से कहते हैं कि:—

सावधान सब लोग रहहु सब भाँति सदा हीं।
जागत ही सब रहैं, रैनहूँ सोवहिं नाहीं॥

❀ ❀ ❀ ❀

तोड़ा सुलगत चढ़े रहैं घोड़ा बन्दूकन।
रहैं खुली ही म्यान प्रतंचे नहिं उतरे छन॥

आठवे अंक में महाराज के गुप्तचर पागल बने हुए विष्णु शर्मा का पार्ट आता है। उसको पढ़ते समय ऐसा ज्ञात होता है कि वह सचमुच ही पागल थे। नाटक के दृश्यों में यही खूबी होनी चाहिए। जिसका दृश्य दिखाया जाय वह पूरा उतरे। कृत्रिमता प्रकट न हो।

विष्णु शर्मा महाराज के मृत्यु संवाद को सुनकर भारतवर्ष की दशा की याद कर कैसे करुणापूर्ण शब्दों में कहते हैं कि :—

कहाँ करुणा निधि केशव सोए।
जागत नेक न यदपि बहुत विधि भारतवासी रोए॥
इक दिन वह हो जब तुम छिन नहिं भारत हित बिसराए!
इत के पसु गज कों आरत लखि आतुर प्यादे धाए॥

❀ ❀ ❀ ❀

कहां गए सब शास्त्र कही जिन भारी महिमा गाई।
भक्तवछल करुनानिधि तुम कँह गायो बहुत बनाई॥

'भारतदुर्दशा' में भरतवर्ष की, आलस्य, द्वेष, फूट, आदि दुर्गुणों से जो अवनति हुई है उसका वर्णन है।

'अंधेर नगरी' एक प्रहसन है। इसमें मूर्खराजा के राज्य में कैसा अंधेर होता है इस बात का दिग्दर्शन कराया है। जहाँ गुणी-अवगुणी एक से समझे जाँय, जहाँ सभी धान बाइसपसेरी तौले जाँय, वहाँ रहना कैसा हानिकर है आदि बातों का अच्छी तरह उल्लेख किया है। महंतजी अपने चेले को अन्धेर नगरी में रहने में मना करते हुए कहते हैं कि—

सेत-सेत सब एकसे, जहाँ कपूर कपास।
ऐसे देश कुदेश में, कबहुँ न कीजे बास॥
बसिए ऐसे देश नहिं, कनक वृष्टि जो होय।
रहिए तो दुख पाइए, प्रान दीजिए रोय॥

'सतीप्रताप' में प्रात-स्मरणीया सावित्री का चरित्र वर्णन किया गया है। यह अपूर्ण है।

'प्रेम योगिनी' नाटक इन्होंने अपने संबंध में ही लिखना आरम्भ किया था। काशी में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं थी जो इनसे वृथा द्वेष रखते थे। इनकी कीर्ति से उन्हें ईर्षा होती थी। इनकी कविता के संबंध में ऐसे लोग कहते थे कि—"अरे कवित्त तो इनके बापौ बनावत रहे। कवित्त बनावै से का होइथै और कवित्त बनावना कुछ अपने लोगन का काम थोरे हय, ई भांटन का काम है।"

'नाटक' नामक ग्रन्थ में इन्होंने नाटकों के रचने के नियमादि दिए हैं। किस नाटक में कितने अंक, कितने पात्रादि होने चाहिएँ इसका उल्लेख है।

कविताओं के कुछ उदाहरण

इनकी कविताओं के गुणों को देखने के लिए तो इनके बनाए ग्रन्थों को ही पढ़ना चाहिए। यहाँ सब कविताओं का देना सम्भव नहीं है। सिर्फ़ कुछ चुनी हुई कविताएँ दी जाती हैं।—

दोहा

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घनकोऊ, लखि नाचत मन मोर॥

❀ ❀ ❀ ❀

मोरौ सुख घर ओर सों, तोरौ भव के जाल।
छोरौ सब साधन सुनौ, भजौ एक नँदलाल॥

❀ ❀ ❀ ❀

तन पुलकित रोमांच करि, नैननि नीर बहाव।
प्रेम मगन उनमत्त ह्वै, राधा राधा गाव॥
श्रीपद अंकित ब्रजमही, छबि न कही कछु जाय।
क्यों न रमाहू को हियो, या सुख को ललचाइ॥

❀ ❀ ❀

परम प्रेम गुन रूप रस, ब्रज संपदा अपार।
जै जै जै श्री गोपिका, जै जै नन्द-कुमार॥

सवैया

दीन दयाल कहाइकै धाइकै,
दीनन सों क्यों सनेह बढ़ायो।
त्यों हरिचंद जू वेदन में करुना—
निधि नाम कहौ क्यों गनायो॥
ऐसी रुखाई न चाहिए तापै,
कृपा करिकै जहि कौं अपनायो।
ऐसो ही जोपै सुभाव रह्यौ,
तो गरीब नेवाज क्यों नाम धरायो॥

❀ ❀ ❀

जग सूरज चंद टरैं तो टरैं पै न सज्जन नेहु कबौ बिचलै।
धन संपति सर्बस गेह नसौ, नहिं प्रेम की मेंड़ सों एड टलै॥
सतवादिन को तिनका समप्रान, रहे तो रहे वा ढलै तो ढलै।
निज मीत की प्रीति प्रतीति रहौ एक और सबै जग जाउमलै॥

❀ ❀ ❀

तिनको ना कछू कबहूँ बिगरै, गुरु लोगन को कहनो जे करैं।
जिनकों गुरु पंथ दिखावत हैं ते कुपंथ में भूलि न पाँव धरैं॥
जिनकों गुरु रच्छत आप रहैं, ते बिगारे न बैरिन के बिगरैं।
गुरु को उपदेश सुनौ सब ही, जग कारज जासों सबै संभरैं॥

कवित्त

आइकै जगत बीच काहूँ सों न करै बैर,
कोऊ कछू काम करै इच्छा जौ न जोई की।
ब्राह्मन की, छत्रिन की, वैसनि की, सूद्रनि की,
अन्त्यज मलेच्छ की न ग्वाल की न भोई की॥
भले की बुरे की हरिचंद से पतितहू की,
थोरे की बहुत की न एक की न दोई की।
चाहे जो चुनिन्दा भयो, जग बीच मेरे मन,
तौ न तू कबहूँ निन्दा करु कोई की॥

❀ ❀ ❀ ❀

सुन्दर सुचिक्कन सुठार श्याम सोहै महा,
कोटि लावन्य धाम लटक निज अंग की।
कोमल चरन कौंल नटवर ठोर-मोर,
पोर-पोर छोरै छबि कोटिन अनंग की॥
वंक गति लंक तें सु अंक लौं तिरीछे ठाढ़े,
मृदुकर कीन्हें मुद्रा बेनु के प्रसंग की।

कुंडल स्रवन सीस चंद्रिका नमन जै-जै,
राधिका रमन लाल, ललित त्रिभंग की ॥

❀ ❀ ❀ ❀

पूरन सुकृत फल श्रीभट गुपाल जू कै,
भक्त महिपाल जू के संकट समन जू।
दौरे गजराज काज लाज राखी द्रौपदी की,
धार्यो गिरिराज देव मद के दमन जू॥
निज दासी दीन दुख हरन चरन चारु,
सुख के करन सदा संपदा ममन जू।
मुरली लकुटवारे चंद्रिका मुकर वारे,
दुरित हमारे दरौ राधिका रमन जू॥

छप्पय

जय-जय नन्दा नन्द करन वृषभानु मान्यतर।
जयति जसोदा सुवन कीर्तिदानकर ॥
जय श्रीराधा प्राननाथ प्रनतारति भंजन।
जय वृन्दावन चन्द्र चन्द्र-वदनी मन रंजन ॥
जय गोपति-गोपत्ति-गोपपति, गोपीपति गोकुल सरन।
जय कष्ट हरन करुना भरन, जय श्रीगोवर्द्धन धरन ॥

पद

अहो हरि, बस अब बहुत भई।
अपनी दिशि विलोकि करुनानिधि, कीजै नाहिं नई ॥
जो हमरे दोषन कों देखौ, तौ न निबाह हमारौ।
करिकै सुरत अजामिल गज की, हमरे करम बिसारौ ॥

अब नहिं सही जाति कोऊ विधि, धीर सकत नहिं धारी।
हरीचंद को वेगि धाइ कै, भुज भरि लेहु उबारी॥

❀ ❀ ❀

नखरा राह-राह को नीको।
इतनौ प्रान जात हैं तुम बिनु, तुम न लखत दुख जी को॥
धावहु वेगि नाथ करुणा करि, करहु मान मति फीको।
हरीचंद अठलानि पने को, दियो तुमहिं विधि टीको॥

❀ ❀ ❀ ❀

गाने योग्य पद

धनि धनि भारत की छत्रानी॥
वीर कन्यका वीर प्रसविनी, वीर वधू जगखानी॥
सती सिरोमनि धरम धुरंधर, बुधि-बल-धीरज खानी।
इनके जस की तिहूँ लोक में, अमल धुजा फहरानी॥

❀ ❀ ❀

'जय जय श्रीरुक्मिन महारानी।
निज पति त्रिभुवन पति हरि पद में छायासी लपटानी॥
सती-सिरोमनि रूपरासि करुना मय सब गुन खानी।
आदि शक्ति जग कारनि पालनि निज भक्तन सुखदानी॥

❀ ❀ ❀

बिहारी के दोहों पर कुण्डलियाँ

सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उरमाल।
इहि बानिक मो मन बसो, सदा बिहारी लाल॥
सदा बिहारी लाल बसो बाँके उर मेरे।
कानन कुंडल लटकि निकट अलकावलि घेरे॥

श्री हरिचंद त्रिभङ्ग ललित मूरति नटवरकी ।
टरौ न उर तैं नेकु, आज कुंजन सो दरसी ॥

❀ ❀ ❀

पहेलियाँ

सब गुरुजन को बुरी बतावै, अपनी खिचड़ी अलग पकावै ।
भीतर तत्व न झूठी तेज़ी, ए सखि सज्जन नहिं अंगरेज़ी ॥

❀ ❀ ❀ ❀

तीन बुलाए तेरह आवैं, निज-निज विपता रोइ सुनावैं ।
आँखों फूटै भरे न पेट, ए सखि सज्जन, नहिं ग्रेजूएट ॥

❀ ❀ ❀ ❀

मतलब ही की बोलैं बात, राखे सदा काम की घात ।
डोलैं पहिरे सुन्दर समला, क्यों सखि सज्जन ? नहिं सखि अमला ॥

❀ ❀ ❀

इनकी उनकी ख़िदमत करो, रुपया देते देते मरो ।
तब आवै मोहि करन ख़राब, क्यों सखि सज्जन नहीं ख़िताब ॥

❀ ❀ ❀

उर्दू काव्य

जहाँ देखा वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है ।
उसी का सब है जलवा जो जहाँ में आशकारा है ॥
तेरा दम भरते हैं हिन्दू अगर नाक़ूस बजता है ।
तुम्हीं को शेख़ ने प्यारे अज़ाँ देकर पुकारा है ॥
न होते जलवा गर तुम तो य गिरजा कब का गिर जाता ।
नसारा को भी तो आख़िर तुम्हारा ही सहारा है ॥

तुम्हारा नूर है हर शै में कह से कोह तक प्यारे।
इसीसे कहके हर हर तुमको हिन्दू ने पुकारा है॥
गुनह बख़्शी रसाई दो 'रसा'※ को अपने क़दमों तक।
बुरा है या भला है जैसा है प्यारे तुम्हारा है॥

※ ※ ※ ※

आगई सिर पर क़ज़ा लो सारा सामा रह गया।
एफ़लक क्या क्या हमारे दिल में अरमां रह गया॥
बाग़बां है चार दिन की बाग़ आलम में बहार।
फूल सब मुरझा गए ख़ाली बयाबां रह गया॥
इतना एहसाँ और कर लिल्लाह ऐ दस्ते जनूं।
बाक़ि गरदन में फ़क़त तारे गिरेबां रह गया॥
याद आई जब तुम्हारे रुए रौशन की चमक।
मैं सरासर सूरते आईना हैरां रह गया॥
ले चले दो फूल भी इस बाग़ आलम से न हम।
वक्त रह तलहैफ़ है ख़ाली ही दामा रह गया॥
नातवानी ने दिखाया ज़ोर अपना ए 'रसा'।
सूरते नक़्शे क़दम मैं बस नुमायां रह गया॥

※ ※ ※ ※

अबीरी रङ्ग अबरू पर नहीं उसके नुमायाँ है।
अबीरी म्यान में है मग़रबी तलवार होली में॥

※ ※ ※ ※

हूँ वलाग़र कि दमे नज़ए मेरी बालीं पर।
मौत भी आई तो अंगुश्त बदन्दां आई॥

※ ※ ※ ※

※ हरिश्चन्द्र जी का उपनाम।

इसके अतिरिक्त गुजराती, पंजाबी, मारवाड़ी, बंगला संस्कृत और अँग्रेज़ी में भी कविताएं की हैं। अँग्रेज़ी का एकाध पद्यांश यहाँ देना उचित जान पड़ता है।

For the kiss she gave him was his first and last.
Kiss of dagger, driven to his heart and past.
At her feet he wallowed, choked with wicked
blood.
In his breast the *katar* stood quirred where it
stood.
At the hilt his fingers vainly-wildly-try.
Then they stiffen feeble; die! thou slayer
die!

× × × ×

Underneath the star light sooth a sight dead,
Like the godess Kali, comes she with the head.

'नीलदेवी'

महायात्रा

सन् १८८२ में इन्होंने उदयपुर की यात्रा की थी। इसका उल्लेख किया जा चुका है। इस यात्रा से लौटते समय ये बीमार पड़े। बहुत कुछ चिकित्सा करने पर कुछ काल के लिए रोग तो मिट गया

परन्तु उसकी जड़ नहीं गई। उस समय से ये बराबर कमज़ोर होते गए। परन्तु परिश्रम करना फिर भी न छोड़ा। आदत से लाचार थे। निरुद्यमी कभी रह ही नहीं सकते थे। फलस्वरूप दिन-दिन स्वास्थ्य बिगड़ने लगा।

साहित्यचर्चा और पुस्तकें लिखना इस समय भी न छोड़ा। सन् १८८३ में 'नाटक' नामक ग्रन्थ बनाया।

इसके बाद कभी अच्छे हो जाते तो कभी बीमारी ज़ोर करती। इस तरह कई महीने बीत गए। चिकित्सा बराबर जारी रही। श्वांस का रोग तो पहले ही से था, उसपर ज्वर आने लगा। धीरे-धीरे क्षय रोग हो गया। महायात्रा की तैयारी धीरे-धीरे होने लगी।

इस प्रकार एक वर्ष और बीता। सन् १८८५ के आरम्भ में ज्वर का प्रकोप फिर बढ़ा। इस बार का ज्वर का वेग अधिक था। डाक्टरों को भी सन्देह होने लगा। इन्हें भी निश्चय हो गया कि अब बहुत ही शीघ्र महायात्रा करनी पड़ेगी।

परन्तु ऐसे समय में धैर्य नहीं छोड़ा। मित्रों से बराबर बातचीत करते रहते।

प्रत्येक समय ईश्वर का नाम मुँह से निकलता था। ईश्वरपरायण तो ये पहले ही से थे, परन्तु सन् १८८२ से इनका मन संसार से कुछ विरक्त हो चला था। भक्तिरसपूर्ण कविताएँ ही लिखते और गाते थे। इनकी अंतिम कविता से भी संसार से विरक्ति टपकती है। वह कविता यह है।

"डंका कूचका बज रहा मुसाफ़िर जागो रे भाई।
देखो लाद चले पन्थी सब तुम क्यों रहे भुलाई॥
जब चलना ही निहचै है तब लैकिन माल लदाई।
हरीचंद हरिपद बिनु नहिं तो रहि जैहे मुँह बाई॥

इस प्रकार का—'झूठो हू कलंक सुनि सीता ऐसी सती तजी नाथ सांचो हूं कलंकी ताहि कैसे अपनावोगे' कवित्त बराबर पढ़ा करते थे। मानों ईश्वर ने महायात्रा का संवाद इन्हें पहले दे दिया हो।

बीमारी के समय घरमें से दासी ख़बर पूछने आई। पूछा अब हाल कैसा है? उससे कहा कि, "हमारे जीवन नाटक का प्रोग्राम नित-नित नया छप रहा है। पहले दिन ज्वर का, दूसरे दिन दर्द का, तीसरे दिन खाँसी का सीन हो चुका है। देखें लास्ट-नाइट कब होती है" बेचारी दासी चुपचाप चली गई।

अंतमें ६ ठी जनवरी सन् १८८९ की रात को लास्ट-नाइट (अंतिमरात्रि) आही पहुँची। हिन्दी-संसार को अपने कुटुम्बियों तथा मित्रों को शोक सागर में डुबोकर ये सदा के लिए चल बसे।

इनका मृत्यु का सम्बाद बिजली की तरह चारों ओर फैल गया। जो सुनता था वही दुखी होता था।

पंडित, विद्वान, ज्योतिषी, कवि आदि से लेकर निम्न श्रेणी के चाकर तक हाय-हाय करने लगे। मित्रों का तो कहनाही क्या था। उनका तो मानों सहाराही उठ गया। देश में जितने समाचार पत्र निकलते थे सबों ने इनकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया। कोई-कोई समाचार पत्र तो महीनों इनके सम्बन्ध में लिखते रहे। देशी भाषा के पत्रों ने ही नही अन्य भाषाओं के पत्रों ने भी शोक प्रकट किया। इनके सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न समाचार पत्रों ने जो लिखा था अथवा मित्र वर्ग ने अपनी-अपनी जो सम्मतियाँ प्रगट की थीं वे सभी यहाँ नहीं दी जा सकतीं। फिर भी मझौली नरेश श्रीमानलाल खड्ग बहादुर मल की उर्दू कविता यहाँ पर देकर इस दुखद प्रसङ्ग को समाप्त करते हैं :—

जहाँ में हाय अभी धूमयों मचा के चले।
जो फ़ितना सोता था नाहक़ उसे जगा के चले॥
ये जान लो जो न भूलेंगे हम क़यामत तक।
तुम्हीं थे ऐसे कि दिलसे हमें भुला के चले॥
बेचारी हिन्दी का हाल होवेगा अफ़सोस।
बताओ इसका ठिकाना भी कुछ लगा के चले॥
नसीब किसको हुआ था कभी बनारस में।
जो चार दिन का तमाशा हमें दिखा के चले॥
'रसा' की गरचे रसाई हुई है जन्नत में।
हज़ारों ही को मगर दहन में रुला के चले॥

स्मारक

वैसे तो ये अपना ऐसा दृढ़ स्मारक छोड़ गए हैं कि जब तक हिन्दी भाषा भाषी रहेंगे। तब तक इनकी कीर्त्ति अमर रहेगी। परन्तु मित्रों का जो कर्त्तव्य इनके प्रति था उसे भी निवाहना उचित था। श्रद्धा के दो फूल चढ़ाने के सिवा मित्र वर्ग और करही क्या सकता था।

इनकी मृत्यु के बाद इनके मित्रों ने इनके भिन्न-भिन्न स्थानों में कई स्मारक स्थापित किए उन में से कुछ का वर्णन यहाँ दिया जाता है।

काशी में जो चौखम्भा स्कूल इन्होंने स्थापित किया था। उसका नाम हरिश्चन्द्र स्कूल कर देने का प्रस्ताव पारितोपिक वितरण के अवसर पर राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने किया। प्रस्ताव का अनुमोदन जिलाधीश मि० आडम ने किया। प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हुआ। उसी दिन से यह स्कूल हरिश्चन्द्र स्कूल के नामसे प्रसिद्ध हुआ। आज कल यह हाई स्कूल है।

उदयपुर में इन के नाम से "हरिश्चन्द्रार्य्य विद्यालय' स्थापित किया गया तथा जमोर जिला गया से 'हरिश्चन्द्र कौमुदी' नामक एक मासिक पत्र निकाला गया।

पंडित गोपीनाथ लाहिरी ने अपने पत्र 'मित्र विलास' में इनके नाम से संवत् चलाने का प्रस्ताव किया। उसके अनुसार कुछ समाचार पत्र इनके संवत् को काम में लाने लगे।

श्री० कौशल प्रसाद वर्मा ने सौ वर्ष की एक यन्त्री इन्हीं के नाम पर छपा कर वितरित की। उस यन्त्री में इनके सम्बन्ध में कुछ दोहे लिखे थे। कुछ दोहे यहाँ बा० शिवनन्दन सहाय की पुस्तक से दिये जाते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

किञ्चित निजगुण किरन सों, हृदय अकाश प्रकाशि।
प्रिय हरिशशि मम हितु न कर, देहु ताप तम नाशि॥

❀ ❀ ❀ ❀

हमनित चित सो चहहि यह, शतजीव प्रिय मित्र।
लहहु बड़ाई जगति बसि, गहहु उदार चरित्र॥
जीवन कर विश्वास नहिं, बहुत हतो परमान।
वाहि जानि नहि दीजिए, याते चाहुँ सुजान॥

इसी प्रकार जिन्हें कविता शक्ति परमेश्वर ने दी थी उन्होंने इनके सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न तरह की कविताएँ बनाईं। किसी ने 'हरिश्चन्द्र-शोकावली' बनाई तो किसी ने हरिश्चन्द्राष्टक।

इनके अतिरिक्त कई स्थानों पर इनके नाम से वाचनालय और पुस्तकालय स्थापित किए गए। सचमुच ये ऐसे ही व्यक्ति थे।

बनिज वंश अवतंस धैर्य धीरज बपुधारी।
चौंसठ कला प्रवीन प्रेम मारग प्रतिपारी॥
विद्या विनय विशिष्ट शिष्ट समुदाय समाजित।
कविता कल कमनीय कृष्णलीला जगप्लावित॥

कई लच्छ बानी भगतमाल, उत्तरा रघकरन।
आदि अंत सोभित भए, हरिश्चन्द्र प्रातःस्मरन॥

'श्री राधाचरण गोस्वामी'

काव्य कला बहु भाषा प्रवीन, उदार बड़ो सबको सुखदाई।
कीन्हों न काहूँ सों बैर कबौं, जग में सब भाँति सों लीनी बड़ाई॥
छांड़ि सबै धन धाम को मोह, करी एक नागरी की सेवकाई।
जौ लों रहैं हरिचन्द्र-धरापै, रहैं हरिचन्द की कीरति छाई॥

—लेखक

मुद्रक—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

तिथि	संख्या	तिथि	संख्या

कल्याण – म
का
पथिक



स्वामी श्रद्धानन्द

भूमिका: प्रो॰ स्वतंत्र कुमार कुलप